सतत शिक्षा पुस्तकमाला

हमारा स्वास्थ्य

शाम अष्टेकर

अनुवाद
कालिंदी देशपांडे

चित्र
चैताली चटर्जी

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-3557-X

प्रथम संस्करण : 2001 (शक 1923)

Aapale Arogya (Original Marathi)
Hamara Swasthya (Translation in Hindi)
रु. 12.00
निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली—110 016 द्वारा प्रकाशित

अनुक्रमणिका

1
प्रस्तावना

बीसवीं सदी

हाल ही में हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं। मानवता के इतिहास में बीसवीं सदी सबसे अधिक शानदार रही है।

इस सदी में मानव ने विज्ञान-तंत्र ज्ञान के द्वारा अभूतपूर्व छलांग मारी। पूरे विश्व में अनाज की पैदावार बढ़ गई। नई-नई दवाइयों की खोज एवं निर्माण से अचानक मौत की घटनाएं काफी कम हो गईं और मानव ने कई बीमारियों पर विजय प्राप्त की। इसी समय में पृथ्वी पर जनसंख्या बढ़ी, जीवन-मान बढ़ा, बाल-मृत्यु की दर एक प्रतिशत से भी कम हो गई। यातायात का विकास हुआ और दूरसंचार के साधनों में बढ़ोतरी हुई। इससे ज्ञान का विस्तार हुआ। कंप्यूटर का आविष्कार तो एक क्रांति ही साबित हुआ। यह मानव को प्रगति की उस दुनिया में ले गया जहां सारा विश्व एक गांव बन गया है।

यूरोप व अमेरिका में यह प्रगति सबसे तेज रफ्तार से हुई। विज्ञान में प्रगति की यह लहर हमारे यहां भी आ पहुंची, लेकिन औसत आयुर्मान, बाल-मृत्यु, पोषण व शारीरिक विकास, बीमारियों की दर आदि विषयों में हमारी गिनती पिछड़े देशों में होती है। हजारों सालों की सांस्कृतिक प्रगति के बाद यह स्थिति गौरवपूर्ण नहीं है। विज्ञान की वजह से सहज-सुलभ बनी प्रगति का आस्वाद लेना है तो भारत को कुछ खास प्रयास करने होंगे।

आजादी के बाद के पचास सालों में भारत में क्या-क्या हुआ, क्या करना रह गया, इसकी समीक्षा इस पुस्तक में की गई है। भारत की प्रगति के आंकड़े विश्व की तुलना में पुस्तक के अंत में दिए गए हैं।

आइए, निश्चय करते हैं कि हर कमी को मिटाकर हमें दुनिया के उन्नत राष्ट्रों की पंक्ति में बैठना है।

भारत : अतीत और वर्तमान

हजारों साल पहले ईशावास्य उपनिषद में कहा गया है, "अच्छे कर्म करते हुए सौ साल जीने की उम्मीद कर।" इस एक ही वाक्य में मानव जीवन तथा स्वास्थ्य का दार्शनिक संबंध रेखांकित होता है।

लगभग बीस साल पहले विश्व स्वास्थ्य संगठन के *अल्मा अटा* में हुए सम्मेलन में जो महत्त्वपूर्ण फैसले हुए, उनका अर्थ भी यही है। हर व्यक्ति को जीवन में उपयुक्त काम करने का अवसर मिलना चाहिए यही उसका अर्थ है। विश्व के अधिकांश राष्ट्र इस स्वप्न को सन् 2000 तक पूरा करने की कोशिश में जी जान से लगे रहे।

इस सम्मेलन में हिस्सा लेने वालों में भारत भी एक देश था। 1997 में हमारे देश को आजादी मिले पचास साल पूरे हुए। पचास साल पहले हमारे यहां स्वास्थ्य की जो स्थिति थी उससे यद्यपि हम काफी आगे निकल चुके हैं, पर इससे अधिक प्रगति करना संभव था। आजादी मिली तब भारत में स्त्री-पुरुषों का आयुर्मान औसतन 41 था जो आज बढ़कर 58 हो गया है। उस समय आबादी 36 करोड़ थी जो 1991 में 84 करोड़ हो गई।

सन् 2001 के ताजा जनगणना के मुताबिक देश की आबादी 1 अरब की संख्या को पार कर गई है।

प्लेग, चेचक जैसी खतरनाक बीमारियां जिस प्रकार से

दुनिया भर में कम हुईं, उसी तरह भारत में भी पीछे हट गई (बीच में प्लेग ने कुछ समय के लिए फिर से अपना सिर उठाया था), लेकिन मलेरिया, तपेदिक या क्षय रोग (टी. बी.) आदि गंभीर बीमारियां आज भी पीछा छोड़ने को तैयार नहीं हैं। उल्टा एड्स जैसी नई चुनौतियां हमारे सामने आ खड़ी हुई हैं।

दुनिया की तुलना में भारत

यह सच है कि भारत का स्वास्थ्य बीते पचास साल में बेहतर हुआ है। लेकिन इसी समय में दुनिया के अनेक देश हमसे कई गुना आगे निकल गए। यहां तक कि हमारे जैसे दूसरे पिछड़े देश भी आगे बढ़े। अपवाद सिर्फ दक्षिणी अफ्रीका के कुछ देश, पाकिस्तान व बांग्लादेश हैं। इस किताब में एक तालिका दी गई है, उससे यह स्पष्ट हो जाएगा।

कुछ अफ्रीकी देशों को छोड़ दिया जाए तो बीमारी और असमय मृत्यु की वजह से बरबाद हुए मनुष्य वर्ष भारत में सबसे अधिक हैं। यानी हमारे यहां हमारा सबसे अधिक नुकसान बीमारियों और असमय मृत्यु की वजह से होता है।

टी. बी. से ग्रस्त नए मरीजों की गिनती करेंगे तो पता चलता है कि हम इस मामले में गरीब दक्षिणी अफ्रीकी देशों के साथ हैं। कुपोषण से शारीरिक विकास अवरुद्ध होने वाले बालकों की संख्या भारत में सबसे अधिक, यानी 65 प्रतिशत है।

जन्म से चार साल के अंदर मरने वाले बालकों की दर दक्षिणी अफ्रीकी देशों को छोड़कर भारत में सबसे अधिक है। दस प्रतिशत शिशु पैदा होते ही मर जाते हैं। विकसित देशों में यह दर 1 से 3 प्रतिशत जितना कम हो गया है। शौचालय की सुविधा, पीने का साफ पानी, सफाई व्यवस्था आदि मनुष्य की बिल्कुल बुनियादी

सुविधाओं में गिना जाता है। यह आश्चर्यजनक और दुखद है कि आजादी के पचास वर्ष से अधिक बीत गए अब तक देश में 85 प्रतिशत लोगों को शौचालय जैसी सफाई विषयक बुनियादी सुविधा भी उपलब्ध नहीं हो पाई है, 30 प्रतिशत आबादी को पीने का साफ पानी नहीं मिलता है। इसी से हमारा पिछड़ापन साबित होता है। लेकिन बच्चों को टीका लगाने के मामले में हम अन्य पिछड़े देशों के बराबर हैं।

चीन, श्रीलंका, दक्षिण कोरिया आदि किसी समय हमारे बराबर होने वाले देश अब हमसे आगे निकल गये हैं। स्वास्थ्य के मामले में हमारा देश पिछड़े देशों की गिनती में आता है।

तो क्या हम स्वास्थ्य सेवाओं पर कम पैसा खर्च करते हैं? यदि सरकारी खर्च को देखें तो अन्य देशों की तुलना में वह कम है, लेकिन निजी क्षेत्र में काफी खर्च किया जाता है। इसलिए यदि दोनों को मिला लिया जाए तो कुल मिलाकर स्वास्थ्य सेवाओं पर हमारा खर्च कुछ कम नहीं है।

आम तौर पर हमारे स्वास्थ्य का दर्जा हमारे जीवन-मान पर निर्भर होता है। जितना हमारा जीवन-मान बेहतर, उतना ही हमारा स्वास्थ्य बेहतर। देश में स्वास्थ्य का दर्जा बेहतर रखना है तो पोषण, पानी वितरण-व्यवस्था, क्रयशक्ति, शिक्षा, यातायात के साधन आदि सभी क्षेत्रों में विकास करने की आवश्यकता है। सिर्फ दवाइयां और डाक्टरों पर देश का स्वास्थ्य निर्भर नहीं रह सकता।

विभिन्न राज्यों में स्थिति

भारत में स्वास्थ्य संबंधी आंकड़े हमने देख लिए। लेकिन यह तस्वीर सब जगह एक जैसी नहीं है। शहर और गांवों में बुनियादी अंतर है। सरसरी तौर पर कहा जा सकता है कि शहरों के आंकड़े आम तौर

पर बेहतर होते हैं पर गांवों में स्थिति उतनी ही खराब है।

भारत में उत्तर-दक्षिण के आंकड़ों में काफी अंतर है। आम तौर पर यह कह सकते हैं कि दक्षिणी प्रांत स्वास्थ्य के मामलों में बेहतर हैं। फिर भी क्षेत्रवार फर्क जरूर है। साधारण मृत्यु-दर, बाल मृत्यु-दर, माता मृत्यु-दर, साधारण जन्म-दर, अपेक्षित औसत आयुर्मान, प्रसूति के समय मिलने वाली मदद, औसत वजन, कद की लंबाई, बीमारी की दर, शुद्ध पीने का पानी, सफाई, दुर्घटना की दर, उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाएं, औसत जन्म-वजन, स्त्री-पुरुष अनुपात आदि कई मामलों में क्षेत्रवार तुलना संभव है। हम इनमें से कौन-से मुख्य फर्क हैं यह देखेंगे।

मृत्यु-दर, बाल-मृत्यु, अपेक्षित आयुर्मान, स्त्री-पुरुष अनुपात आदि मामलों में केरल, गोवा, तमिलनाडु—ये राज्य बेहतर हैं। उसके बाद महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, पंजाब आदि आते हैं, व आखिर में हिंदी भाषा-भाषी चार राज्य—उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान व मध्य प्रदेश आते हैं।

स्वाभाविक है कि जनसंख्या वृद्धि का प्रश्न इन राज्यों में इसी क्रम से गंभीर है। कुल बीमारियों की दर भी इसी क्रम में बढ़ता हुआ व स्वास्थ्य सेवाओं का घटता हुआ दिखाई देता है। प्रति व्यक्ति अनाज का वितरण व वजन तथा कद के मुद्दे पर पंजाब व हरियाणा आगे हैं।

एड्स के बारे में देखें तो महाराष्ट्र (मुख्यतः मुम्बई व पुणे) में परिस्थिति सबसे अधिक चिंताजनक है। वैसे तो भारत के हर बड़े शहर में एड्स का प्रभाव बढ़ रहा है। देश के उत्तर-पूर्वी प्रदेश में भी एड्स का प्रकोप बढ़ रहा है।

इन सबकी तुलना में केरल, गोवा व उसके बाद तमिलनाडु—इन राज्यों में स्वास्थ्य की हालत बेहतर है, लेकिन संपन्नता में बेहतर

पंजाब इनसे पीछे है। इससे क्या निष्कर्ष निकल सकता है?

केरल, तमिलनाडु के संपन्न नहीं होते हुए भी महिलाओं की हालत वहां बेहतर होने से यह संभव हुआ। जहां महिलाओं का सामाजिक दर्जा बेहतर होता है वहां समाज के स्वास्थ्य और अन्य मामलों में भी सुधार आता है। इन दोनों के बीच गहरा संबंध है।

सन् 2000 तक स्वास्थ्य–सबके लिए

विश्व स्वास्थ्य संगठन के रिपोर्ट के मद्देनजर अन्य देशों की तरह भारत ने भी 'सबके लिए स्वास्थ्य–सन् 2000 तक' की घोषणा 1980 में की थी।

सन् 2000 का वर्ष अभी-अभी समाप्त हुआ है इसलिए इस विषय में क्या-क्या प्रगति हुई है यह देखना ज्ञानवर्द्धक होगा। अभी और क्या करने की आवश्यकता है यह भी आगे दी गई तालिका से पता चलेगा।

इस तालिका से दिखाई देता है कि मृत्यु-दर घटा है। इस बात के अलावा बाकी प्रगति बहुत कम है। इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए स्वास्थ्य सेवाओं को प्राथमिकता देना बहुत जरूरी था। देहात के स्तर पर यह सेवा ठप होते ही बाकी के तमाम कार्यक्रमों को अंजाम देने वाली व्यवस्थापन का तंत्र पूरी तरह गड़बड़ा गया, क्योंकि जन्म-मृत्यु-दर को छोड़ दिया जाए तो बाकी सबके लिए स्वास्थ्य सेवाओं के व्यवस्थापन का कारगर होना आवश्यक होता है।

इसके अलावा सन् 2000 तक सबके लिए पीने का शुद्ध पानी, खाद्यान्न व दवाइयां उपलब्ध करवाने का लक्ष्य भी रखा गया था। लेकिन इन तीनों विषयों में हालात संतोषजनक नहीं हैं यह कहना पड़ेगा। अपवादस्वरूप कुछ राज्यों को छोड़ दिया जाए तो यह परिस्थिति सब जगहों पर कमोवेश समान रूप से लागू है।

	मापदंड	पहले की स्थिति	आज की स्थिति	लक्ष्य 2000
1.	बाल मृत्यु-दर (प्रति हजार जन्म)	140 (1950)	79(1992)	60 से कम
2.	माता मृत्यु (प्रति हजार जन्म)	---	4	2 से कम
3.	आम मृत्यु-दर (प्रति हजार)	27 (1950)	11.4 (1991)	9 से कम
4.	आम जन्म-दर	40 (1950)	32.5 (1991)	21 से कम
5.	अपेक्षित आयुर्मान (वर्ष)	41 (1950)	58.2 (1991)	64 से ऊपर
6.	प्रसूति पूर्व स्वास्थ्य-सेवा	---	60% (1988)	100% महिलाओं के लिए
7.	प्रशिक्षितों द्वारा प्रसूति	---	50% (1988)	100% प्रसूतियों के लिए
8.	ढाई किलो से कम जन्म वजन के बच्चे	---	30%	10% से कम
9.	रोग मुक्त कुष्ठरोगी	---	24.5% (1991)	80% से ऊपर
10.	रोग मुक्त क्षयरोगी	---	66% (1991)	90% से ऊपर
11.	नेत्रहीन (प्रति हजार)	---	1.4 (1988)	3 से कम

2
स्वस्थ जीवन

स्वास्थ्य की बुनियाद : *पोषक आहार, पीने के लिए साफ पानी, सफाई, शिक्षा आदि।*

समाज तथा देश का स्वास्थ्य मनुष्य के स्वास्थ्य की तरह खुराक, पीने का पानी, सफाई तथा शिक्षा आदि बातों पर निर्भर करता है। इसी तरह बीमारी की रोकथाम, बीमारी के इलाज के लिए अच्छी स्वास्थ्य-सेवाएं होना यह भी एक महत्त्वपूर्ण बात है। जिस देश में इस प्रकार की सुविधाएं अधिक उपलब्ध हैं, वहां बेहतर स्वास्थ्य होता है यह एक आम नियम है।

गांधी जी इसका महत्त्व जानते थे। सभी नवशिक्षा की शुरुआत सफाई से होती है ऐसा उनका मानना था। शौचालय की सुविधा उनके ग्राम-सफाई अभियान का केंद्र था। आज भी हमारे देश में, अधिकतर देहातों में, शौचालय नहीं के बराबर हैं।

हमारे गांवों में सड़क के बीचोंबीच गंदे पानी की नालियां बहती रहती हैं। जगह-जगह पर पानी जमा हुआ रहता है, जहां मच्छर पैदा होते हैं। पानी के निकास की व्यवस्था ग्राम पंचायतों को करनी चाहिए।

गांवों में पक्की सड़कें न जाने कब बनेगी? जब ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार होगा शायद तभी! सड़कें पक्की होने के बाद ही वहां से धूल-मिट्टी के प्रश्न का हल निकलेगा। गांव सिर्फ धूल-मिट्टी ही नहीं है।

गरीबी की वजह से हमारे सभी गांवों के चेहरे पर उदासी-सी छाई है। निर्माण शास्त्र के अनुसार सादा ही सही, लेकिन साफ और सुविधायुक्त मकानों की आवश्यकता है।

हमारे यहां व्यक्तिगत सफाई की कुछ आदतें अच्छी हैं, जैसे—रोज नहाना। लेकिन कुछ आदतें एकदम खराब हैं, जैसे जहां-तहां थूक देना, कहीं भी पेशाब करना, सार्वजनिक जगहों पर कूड़ा-करकट फेंकना आदि। इन आदतों को हमें प्रयत्न के साथ बदलना ही पड़ेगा। उसके बिना दस्त, पेट के कीड़े, टाइफाइड, पीलिया जैसी बीमारियां नहीं रोकी जा सकतीं।

पोषण-आहार

अनाज जीवन का मूल आधार है। दरअसल, आज पृथ्वी पर पूरी मानव-जाति की आवश्यकता की पूर्ति होने लायक अनाज है, फिर भी हमारी समाज रचना इस प्रकार की है कि हर परिवार, हर व्यक्ति को वह मिलेगा ही, इसका भरोसा नहीं है। दुनिया की आधी आबादी अभी तक अनाज के लिए संघर्ष कर रही है।

पूरे विश्व के संदर्भ में यदि हम देखें तो पता चलता है कि भारत में अधिकतर लोगों की खुराक बहुत कम है (अपवाद सिर्फ पंजाब है)। बचपन में ही शरीर का बढ़ना रुक जाना, वयस्कों की औसत लंबाई कम होना, शरीर में काम करने के लिए कम ताकत व उत्साह होना, रोगनिरोधक शक्ति कम होना आदि लक्षण कुपोषण की वजह से दिखाई देते हैं। यह अनाज की कमी का परिणाम है।

इसी प्रकार, कुछ विशेष प्रकार की खुराक न मिलने से रात का अंधत्व, अंधत्व, रिकेट्स, खून की कमी, शरीर में खुजली आदि कुछ विशिष्ट बीमारियां भी देखने को मिलती हैं। शरीर को यदि कम अनाज मिलता है तो शरीर उस परिस्थिति से समझौता कर लेता है,

लेकिन हमारी राशन-व्यवस्था हालांकि खास तौर पर गरीबी रेखा के नीचे जीने वाले परिवारों के लिए बनाई गई है परंतु यह तब उपयोगी साबित होगी जब उसे निर्दोष व सुचारु रूप से चलाया जाएगा, अन्यथा उसका कुछ फायदा नहीं है। गांवों में तो यह व्यवस्था केवल नाममात्र की है।

भारत में अधिकतर गांवों में फसल कटने के बाद अनाज मंडी में चला जाता है, घर के लिए बचता ही नहीं है। नया अनाज आने तक लोगों को खेती के अलावा कुछ अन्य काम, मजदूरी आदि भी करनी पड़ती है।

जिस परिवार में अनाज की कमी होती है वहां उसका बंटवारा असमान रहता है। सर्वप्रथम कमाई करने वाला, उसमें भी सर्वप्रथम पुरुष, उसके बाद लड़के, फिर लड़कियां, फिर मां और आखिर में बुजुर्ग ऐसा क्रम रहता है। इसी वजह से महिलाओं और बुजुर्गों में कुपोषण एक आम बात है। जवानी में इसका एहसास नहीं होता है, लेकिन बढ़ती उम्र के साथ कुपोषण के विपरीत परिणाम नजर आने लगते हैं। कई आदिवासी समूहों में मध्यम उम्र के स्त्री-पुरुष अचानक बूढ़े दिखने लगते हैं, इसका यही कारण है। लंबे समय तक जवानी को बरकरार रखना है तो पौष्टिक आहार लेने व नियमित व्यायाम करने के सिवा दूसरा विकल्प नहीं है।

बच्चे इस कुपोषण का शिकार न बनें इसलिए सरकार की ओर से कुछ योजनाएं चलाई जा रही हैं। 'आंगनवाड़ी' एवं 'स्कूल आहार योजना' ये उनमें से दो प्रमुख योजनाएं हैं। हालांकि स्कूल में खाना मिलता है इसलिए घर में कम खाना दिए जाने का एक खतरा इसमें जरूर रहता है। तमिलनाडु सरकार ने स्कूल आहार योजना को बड़े पैमाने पर चलाया है। अन्य जगहों पर वह इतनी असरदार नहीं है। कुल मिलाकर देखा जाए, तो अंततः हर परिवार की क्रयशक्ति

बढ़ाना, प्रति व्यक्ति अनाज की उपलब्धता बढ़ाना, इसके बिना इस समस्या का कोई अन्य स्थायी समाधान नहीं है। फिर भी सिर्फ उसी के इंतजार में रहना गलत होगा।

कम से कम बच्चों के बारे में हर परिवार को विशेष ध्यान देना चाहिए। शिशुओं के पहले तीन साल उनके शरीर और दिमाग की वृद्धि के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। उन्हें समय-समय पर वह खुराक दिया जाना चाहिए जो वे आसानी से हजम कर सकते हैं। दिमाग की वृद्धि के लिए घी, तेल, चरबी आदि चीजें जरूरी होती हैं। बच्चे सूखी चीजें नहीं खा सकते हैं। उन्हें खीर जैसी चीजें देनी चाहिए। मां का दूध पिलाना कम से कम डेढ़-दो साल तक जारी रखना चाहिए। चौथे महीने से दूध के अलावा, यानी ऊपर का खाना भी देना चाहिए। बच्चों के लिए बालाहार घर में भी बनाया जा सकता है, वह भी कम से कम खर्च में। बच्चे के वजन पर ध्यान देना चाहिए, जिससे वह बढ़ रहा है या नहीं इसका पता चले। बच्चों की ओर मां-बाप ध्यान नहीं देंगे तो और कौन देगा?

शाकाहार या मांसाहार—यह विवाद हमारे देश में बहुत समय से चलता आया है। मांसाहार अधिक खर्चीला है, उसी के मुकाबले का पोषक शाकाहार सस्ता होता है। दरअसल यह जरूरी नहीं है कि सेहत बनाने के लिए मांसाहार ही किया जाए, इसलिए शाकाहार पर खर्च करना अक्लमंदी का लक्षण होगा। तरह-तरह के अनाज, दालें तेल-बीज, ताजी सब्जियां इत्यादि आसानी से मिलने वाली चीजें डिब्बों में बंद व पकी-पकाई चीजों से कई गुना सस्ती होती हैं।

वजन एवं लंबाई

भारत में जन्म के समय का बच्चे का वजन व लंबाई आम तौर पर कम होती है। ढाई किलो से कम वजन होना अच्छी बात नहीं है।

लेकिन 30 प्रतिशत बच्चे इसी प्रकार कम वजन के साथ पैदा होते हैं। ऐसे बच्चे आगे की जिंदगी में भी कमजोर ही रहते हैं। लड़का-लड़की का जन्म-वजन समान ही होता है।

यदि अच्छे वजन का शिशु चाहिए तो इसके लिए काफी पहले से तैयारी करनी पड़ती है। मां का स्वास्थ्य अच्छा हो तो बच्चा भी स्वस्थ पैदा होगा। लड़कियों को छोटी उम्र में बच्चा पैदा होने पर काफी खतरा रहता है। जब तक लड़कियों का शारीरिक विकास पूरा नहीं होता, बाल विवाह पर पाबंदी के कानून का सख्त पालन नहीं होता, तब तक जन्म-वजन में सुधार नहीं होगा। छोटे कद की मां का बच्चा छोटा ही होगा, यह भी एक गलतफहमी है। बच्चा वजनदार होगा तो मां को तकलीफ होगी यह सोचकर मां को कम खुराक दिया जाता है। गरीबी की हालत व सूखे जैसी अस्मानी-सुल्तानी संकट की परिस्थिति में यह सोच व किफायत की आदत बुद्धिमानी का लक्षण है इसमें कौन-सा आश्चर्य है? हम देखते ही आए हैं कि गांवों में औरतों का वजन कितना कम होता है।

खा-पीकर आदमी का वजन तो बढ़ सकता है लेकिन लंबाई बढ़ने के लिए शिशु अवस्था से लेकर युवावस्था तक अच्छा खाना, अच्छी सेहत आवश्यक है। इसीलिए कुछ आहार विशेषज्ञों के अनुसार जिनकी औसत लंबाई अच्छी होती है उनका स्वास्थ्य, उनका जीवनमान बेहतर होता है। पीढ़ी दर पीढ़ी में आने वाला फर्क हम देख सकते हैं। खास तौर पर शहरी मध्य वर्ग में यह बदलाव स्पष्ट दिख रहा है। कुछ हद तक लंबाई आनुवांशिक होती है। लेकिन आनुवांशिक लंबाई की सीमा तक पहुंचने के लिए स्वास्थ्य सही रहना आवश्यक है। हर सामाजिक समूह को अपनी लंबाई, औसत जन्म-वजन बढ़ाने की ओर अब ज्यादा ध्यान देना चाहिए।

पीने का पानी : सेहत की कुंजी

मनुष्य के शरीर में जो कीटाणु घुसते हैं वे मुख्यतः मुंह-नाक के जरिए। हमारी पाचन संस्था तक कीटाणुओं का प्रवास पानी के माध्यम से होता है। कीटाणुओं से दूषित पानी का सेवन हमारे यहां बीमारियों के फैलाव का एक प्रमुख कारण है।

शहर की तरह गांवों में भी शुद्ध पानी का वितरण हो इसलिए सरकार की योजनाएं हैं, लेकिन जहां वे अमल में लाई जा रही हैं वहां भी पानी शुद्ध होने का कोई भरोसा नहीं है। अधिक से अधिक पानी शुद्ध करना यह सबसे बड़ी प्राथमिकता है।

कई गांवों को नदी का पानी मिलता है। नदियां, तालाब आदि का पानी खुला रहता है। उसमें चारों ओर से गंदगी मिलती जाती है, इसलिए उसे उपयोग में नहीं लाया जा सकता। यदि उसे इस्तेमाल करना है तो उसे एक जगह इकट्ठा करने के बाद उसे छानना व उसमें दवाई मिलाना चाहिए। लेकिन ग्राम पंचायतें इस पर पूरी तरह से ध्यान दे रही है ऐसा नहीं लगता है। पानी की टंकियों से समय-समय पर गंदगी निकालना, बालू की परतें साफ करते रहना, ब्लीचिंग पाउडर नियमित रूप से मिलाना आदि बातों पर सही ध्यान नहीं देने से नलों में फिर वही गंदा पानी आता रहता है।

कई गांवों में अब नल-कूप(ट्यूबवेल) की सुविधा हो गई है। नल-कूप का पानी पीने के लिए इस्तेमाल करने से पहले इन क्षारों की जांच कर लेनी चाहिए कि वह पीने योग्य है या नहीं। साल में एक या दो बार कीटाणु व क्षार की जांच होनी चाहिए। प. बंगाल, राजस्थान के अनेक गांवों में नल-कूपों का पानी पीने लायक नहीं रहा है।

नदी अथवा नहर का पानी रोककर यदि उसका शुद्धीकरण किया जाता है तो वह सबसे बेहतर विकल्प होगा। बांध का पानी



अगर खेती के साथ-साथ पीने के पानी के लिए भी इस्तेमाल होता है, तो उससे भूजल पर हमारी निर्भरता कम होगी। यही हमारे हित में होगा।

पीने का पानी घर में भी दूषित हो सकता है। पानी रखने के बर्तन साफ रखना, हाथों की सफाई इन सबका ध्यान रखना चाहिए।

पानी की योजना बनाते समय उसकी शुद्धता के साथ-साथ प्रति व्यक्ति वितरण का भी ध्यान रखना चाहिए। यदि कम पानी मिलता है तो गंदगी बढ़ेगी। इसलिए प्रति दिन, प्रति व्यक्ति कम से कम 40 लीटर का मापदंड उचित माना गया है। इससे कम पानी मिलने से सफाई रखना मुश्किल होगा।

महामारी के दिनों में घर-घर में पानी शुद्ध करना पड़ता है। ऐसे समय पर ब्लीचिंग पाउडर का घोल अथवा गोलियां इस्तेमाल करनी चाहिए। पानी को रात भर स्थिर अवस्था में रखने से ज्यादातर अशुद्ध अवशेष नीचे बैठ जाते हैं व पानी 90 प्रतिशत शुद्ध हो जाता है। इसके बाद कीटाणुनाशकों का इस्तेमाल करना चाहिए। इस प्रकार कीटाणुनाशकों पर पैसा खर्च करना बीमार होकर दवाइयां लेने से बेहतर है।

पानी उबालकर पीना भी एक विकल्प है, लेकिन उसमें ईंधन पर अधिक खर्च होता है। पानी उबलना शुरू होने के बाद कम से कम दस मिनट तक उबालना जरूरी है। तभी उसमें से अधिकतर कीटाणु नष्ट होंगे। पीलिया के कीटाणु पंद्रह मिनट के बाद ही मरते हैं। बहुत से लोग इस झंझट को संभाल नहीं पाते हैं। बासी पानी के इस्तेमाल के लिए पहले बताया हुआ तरीका अधिक सरल व कम खर्चे का है। गांव में यदि नारू (नहरुवा—अधिकतर गर्म देश के लोगों को होने वाला एक रोग, जिसमें विशेषकर शरीर के निचले भाग में फुंसियां हो जाती हैं और उनमें से डोरे की तरह पतली-पतली सफेद चीज

निकलती है) की महामारी चल रही है तो सात बार तह किए हुए कपड़े से पानी छानना चाहिए।

बाजार में बिक रहे फिल्टरों में से डंडे के आकार का छन्ना (फिल्टर) अथवा अल्ट्रावायलेट किरणों से शुद्ध करने वाला छन्ना से पानी काफी हद तक शुद्ध होता है, लेकिन उससे पीलिया के कीटाणु नहीं मरते हैं।

नल-कूपों के पानी में यदि क्षार की मात्रा ज्यादा हो तो उसके लिए एक अलग छन्ना लगाया जा सकता है। इसकी कीमत शुरू में थोड़ी ज्यादा लगती है पर आगे चलकर उसका खर्चा ज्यादा नहीं होता है। सौर ऊर्जा से पानी गरम किए जाने वाले संयंत्रों में भी क्षार-छन्ना लगाया जा सकता है। उसकी क्षमता काफी अच्छी होती है।

व्यक्तिगत स्वच्छता

व्यक्ति-व्यक्ति को मिलाकर ही परिवार, समाज और देश बनता है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य यदि अच्छा नहीं है तो देश का स्वास्थ्य कैसे बेहतर होगा? देश के बेहतर स्वास्थ्य के लिए हमें शुरुआत अपने से ही करनी होगी।

नियमित रूप से नाखून काटना, रोज नहाना आवश्यक है। तभी शरीर स्वच्छ रह सकता है। कपड़ों की सफाई भरपूर पानी मिलने पर निर्भर है और नहाने के लिए एकांत जगह की आवश्यकता है। साबुन का होना आवश्यक नहीं है। रोजाना सिर्फ नहाने से भी दाद, खाज, खुजली की बीमारी काफी कम हो सकती है।

दांतों की सफाई एक बुनियादी बात है। इसके लिए ब्रश इस्तेमाल करना सही है। पेस्ट नहीं होने से भी चल सकता है। ब्रश नहीं होने से नीम या बबूल की डण्डी चल सकती है लेकिन सिर्फ राख से दांतों की सफाई सही नहीं होती है। पीने के पानी में फ्लोराइड की

मात्रा कम होने से दांत सड़ना शुरू हो जाता है।

शौच के बाद हाथ खूब अच्छी तरह से साबुन से धोना पेट की बीमारियां रोकने के लिए आवश्यक है। बच्चों से बड़ों तक सभी को यह आदत बनानी जरूरी है। साबुन न हो तो कम से कम राख इस्तेमाल करनी चाहिए। हाथ साफ धोने चाहिए। कुछ समुदाय शौच के बाद पत्तों का इस्तेमाल करते हैं। कागज इस्तेमाल करने के अंग्रेजी तरीके की ही तरह यह तरीका है।

हमारे देश में यहां-वहां थूकने की आदत है। पान-तंबाकू खाने की आदत कम होने से थूकना भी कम होगा। कुछ लोग घर में भी थूकते हैं। जहां-तहां थूकने से सांस की बीमारियां फैलने में मदद मिलती है। इस गंदी आदत से बचना हमारे लिए हितकर है।

स्त्री-पुरुषों के लिए पर्याप्त संख्या में मूत्रालय एवं अन्य सुविधाएं होना आवश्यक है। व्यक्तिगत सफाई के साथ-साथ दूसरों का साफ रहना भी आवश्यक है। समय-समय पर दूसरों को सफाई का महत्त्व सही तरीके से समझाना जरूरी है।

नए मकान किस तरह के हों?

आदिमानव के जमाने से आज तक मनुष्य अपने रहने की जगह में समय के अनुसार बदलाव करता आया है। नए तरीकों से बनाए गए मकान काफी सुरक्षित व सुविधाओं से युक्त हैं। लेकिन पिछड़ी अर्थव्यवस्था के कारण अधिकतर लोग ये विकसित मकान नहीं बना सकते।

बाहर के जीव-जंतुओं व बाहरी वातावरण से बचाना मकान का सबसे पहला काम होता है। आधुनिक जीवन पद्धति के अनुसार सुविधाएं प्रदान करना यह अगला कदम होगा। नए मकान का निर्माण करते समय कुछ नई सुविधाएं कर सकते हैं, लेकिन आइए,

तब तक कुछ न्यूनतम बातों पर विचारते हैं।

चूल्हा जलाने से घर धुएं से भर जाता है, महिलाओं की जिंदगी दुस्सह हो जाती है, सांस की बीमारियां बढ़ती हैं। धुआं रहित चूल्हा धुआं घर से बाहर फेंकता है व लकड़ी को पूरी तरह से जलाता है इसलिए ज्यादा उपयुक्त है। इसमें ईंधन भी कम लगता है। इसके लिए सरकारी मदद भी मिलती है। लेकिन उसके लिए रुकने की आवश्यकता नहीं है। स्थानीय कारीगरों को यह चूल्हा बनाने की विधि समझना व सीखना जरूरी है।

मकान में पर्याप्त प्रकाश, हवा आना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। मकान का निर्माण करते समय छोटी-छोटी तरकीबों से इसे सुनिश्चित किया जा सकता है।

कई गांवों में घर के अंदर ही जानवर रखे जाते हैं। उनके मलमूत्र की बदबू व गंदगी घर में ही रहती है। इससे घर में रहने वाले सदस्यों का बीमारी से संपर्क बढ़ता है, इसमें कोई शक नहीं। जानवर रखने की व्यवस्था घर के बाहर हो यही सब के लिए अच्छा है।

नहाने के लिए गुसलखाना और नित्य निवृत्ति हेतु शौचालय की व्यवस्था, यह भी घर का हिस्सा है, चाहे वह घर के बाहर क्यों न हों।

चूहे, मच्छर, पिस्सू से मुक्ति पाने के लिए कुछ विशेष सावधानी बरतनी जरूरी है। बारिश के मौसम में घर में सीलन न आए, इसके लिए बुनियाद अच्छी होना जरूरी है। डी.पी.सी. की ऊंचाई बढ़ाना जरूरी है। नए मकान बनाते समय एक-दूसरे से सटकर बनाने के बजाय बीच में थोड़ी जगह रखकर बनाना बेहतर होगा।

शौचालय

खुले में शौच करने से कई प्रकार की बीमारियां फैलती हैं। दस्त, पेट

में कीड़े, टाइफाइड, पीलिया, हैजा, पोलियो, अतिसार आदि बीमारियों से भारतीय नागरिकों की जीवनशक्ति कमजोर हो चुकी है। गांधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम के साथ-साथ इस मोर्चे पर भी अपना संघर्ष जारी रखा था। भंगीमुक्ति व मलविसर्जन के लिए शौचालय इन दो सूत्रों की उन्होंने जिंदगी भर बात की थी।

लेकिन आज भी देहातों में 90-95% व शहरों में 30-40% परिवार शौचालय की सुविधा के अभाव में खुले में शौच करने जाते हैं। इस परिस्थिति को बदलने का काम हमें करना है। हमारे देश में गरीबी की वजह से नए मकानों का निर्माण कम होता है। इस वजह से शौचालय का निर्माण भी कम होता है। मकान एक-दूसरे से सटे होने के कारण शौचालय के लिए जगह नहीं बचती है। सार्वजनिक शौचालय इतने गंदे होते हैं कि उनका उपयोग अपने आप रुक जाता है। इस परिस्थिति में हर परिवार के लिए यदि अपना निजी शौचालय चाहिए तो इसके लिए सस्ते शौचालयों की योजना बनाई जा रही है। सबसे आसान तरीका है गड्ढा बनाकर उस पर फट्टा बिछाना व छिपने के लिए छत। पर हां, हर बार इस्तेमाल के बाद उसमें मिट्टी डालना आवश्यक होगा। एक गड्ढा भरने के बाद जगह बदलकर दूसरा गड्ढा बनाना चाहिए।

मक्खियां व बदबू से मुक्ति पाने के लिए एक मुड़ा हुआ पाइप लगाना सबसे बढ़िया तरकीब है। इसे लगाकर बनाया गया शौचालय सबसे बेहतर होता है। सेप्टिक टैंक बनाना या न बनाना हरेक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है।

सरकार की ओर से शौचालय बनाने के लिए अनुदान मिलता है। लेकिन वह पूरा नहीं होता है व सबको एक साथ मिलेगा इसका भी भरोसा नहीं है। दरअसल, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार किए बगैर शौचालय निर्माण का सवाल लोग गंभीरता से नहीं लेते हैं।

लेकिन तब तक इंतजार करना उचित नहीं होगा।

स्कूली बच्चों के लिए शौचालय की सुविधा देना, बच्चों की आदत बनाना यह काम फौरी तौर पर किया जाना चाहिए। इस तरह एक पीढ़ी में आदतें बदलेंगी व जैसे-जैसे पैसे मिलते जाएंगे, लोग शौचालयों का निर्माण करेंगे।

गंदे पानी व मैले का निकास

जैसे-जैसे पानी अधिक मिलने लगता है वैसे-वैसे उसके निकास की कारगर व्यवस्था करनी पड़ती है, वरना मच्छर पैदा होते हैं व मलेरिया का खतरा रहता है। कई गांवों में घरों का गंदा पानी गांव के बीचोंबीच बहता रहता है व गंदगी बढ़ती रहती है। जहां सीवर की व्यवस्था नहीं है वहां इस गंदे पानी को गड्ढों में छोड़ना चाहिए और उन गड्ढों के पास पानी सोख लेने वाले पेड़ लगाने चाहिए, जैसे कि नारियल, पपीता, सहिजन आदि जिससे पानी पेड़ के जरिये हवा में घुल जाए। इससे पेड़ भी अच्छा बढ़ता है जिससे हमें बेहतर खुराक मिलता है। घरों से निकलने वाला गंदा पानी गड्ढों में अच्छी तरह सोख लिया जाता है।

यदि किसी गांव में सीवर की व्यवस्था हो तो नालियों में से बहने वाले पानी को कहां छोड़ा जाय, यह सवाल जरूर आता है। इस पानी को नदी या नहर में छोड़ने के बजाय खेती में सिंचन के लिए उपयोग में लाना सबसे बेहतर होगा। पानी के प्रदूषण के सवाल को इस तरह जड़ से समाप्त करना ही ठीक होगा।

कूड़ा-कचरे के निपटारे का सवाल कई प्रकार से हल किया जा सकता है। गांवों में ग्राम पंचायतों के बस की यह बात नहीं है कि कूड़ा उठाने की व्यवस्था कर सकें। कई परिवारों के पास एक ही रास्ता होता है कि कूड़ा गड्ढे में इकट्ठा करें व उसे सड़ने दें। इसमें

से प्लास्टिक या उस तरह के कूड़े को अलग करके उसे बेचना अथवा जलाना आवश्यक है। देहातों में अधिकतर कूड़ा जैव किस्म का होता है, इसलिए उसे सड़ाकर खाद के रूप में इस्तेमाल करना संभव.है। इस तरह के खाद से घरेलू जरूरत जितनी सब्जी पैदा की जा सकती है।

गड्ढे भरने के लिए भी कूड़े का उपयोग हो सकता है। लेकिन इस काम को सावधानी से करना चाहिए, वरना और गंदगी फैलेगी।

पेड़ के पत्ते व अन्य जैव खाद जलाने से भारी नुकसान होता है। उसे सड़ने देना यही सबसे अधिक फायदे की बात है। जैव कूड़े से प्रायोगिक तौर पर बायोगैस का निर्माण हो सकता है। बाजार में अब इस तरह के यंत्र मिल रहे हैं।

रहन-सहन

शिक्षा, रिहायशी व्यवस्था, शौचालय, गंदे पानी का निकास, कूड़ा नष्ट करने के तरीके, पीने का साफ और पर्याप्त पानी, पोषक आहार, नियमित व्यायाम व खेलकूद, सार्वजनिक सफाई, स्वास्थ्य सेवाएं आदि को मिलाकर ही 'रहन-सहन' बनता है। यदि उसमें कुछ सुधार होगा तो कई बीमारियां अपने आप कम हो जाएंगी। मिसाल के तौर पर यूरोप में जीवन-स्तर में सुधार होते ही टी.बी. की बीमारी खत्म हो गई, जबकि टी.बी. की दवाइयों की खोज उस समय नहीं हुई थी। इसके विपरीत, हमारे यहां दवाइयां होते हुए भी रहन-सहन का स्तर गिरा हुआ होने से इस बीमारी ने अपने पांव जमा लिये हैं।

जैसे-जैसे रहन-सहन का स्तर बेहतर होगा, परिवार का आकार भी छोटा होता जाएगा, इसमें कोई शक नहीं। आयुर्मान भी बढ़ेगा। शायद बढ़े हुए आयु से कुछ नए किस्म की बीमारियां बढ़ेंगी,

लेकिन उसके लिए कुछ अन्य उपाय किए जा सकते हैं। बुनियादी बात यह है कि रहन-सहन का स्तर बेहतर होने से ही आयु बढ़ेगा, नई पीढ़ी की लंबाई-वजन बढ़ेगी तथा बीमारी से काम के दिनों की होने वाली बरबादी रुकेगी। संक्रामक रोग घटिया रहन-सहन की वजह से होते हैं यह बात अब दुनिया भर में सिद्ध हो चुकी है। इसलिए रहन-सहन का स्तर बेहतर बनाने से ही बीमारियों की रोकथाम हो सकती है और यही उसका सस्ता और आसान तरीका है।

परंतु रहन-सहन का स्तर समाज की आर्थिक स्थिति पर मुख्यतः निर्भर करता है। रहन-सहन का स्तर बेहतर करने की योजनाएं सरकार उसे मिलने वाले करों के आधार पर करती है। इसलिए समाज की संपत्ति, संसाधन, सुविधाएं बढ़ाना यही अच्छे स्वास्थ्य की कुंजी होगी ऐसा मानना सही होगा।

इसीलिए आम तौर पर यह माना गया है कि अच्छे स्वास्थ्य का रहस्य समाज की सामूहिक संपदा, संसाधन, सुविधाएं आदि की वृद्धि होने में छिपा है। फिर भी, चीन व हमारे देश में केरल, तमिलनाडु के उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि कुछ विशेष योजनाएं सफल होने से गरीब समाजों में भी स्वास्थ्य का स्तर बेहतर हो सकता है।

व्यसन-मुक्ति

व्यसन यानी किसी नशीले पदार्थ की लत लगना। तंबाकू, धूम्रपान, शराब का सेवन आदि व्यसन आम आदमी में देखने को मिलता है। इसके अलावा, गांजा, अफीम, ब्राउन सूगर आदि अति नशीले पदार्थों की लत भी बढ़ती जा रही है। दरअसल, इन पदार्थों का सेवन पुराने समय से चलता आ रहा है लेकिन हाल के वर्षों में उसके प्रसार में वृद्धि चिंताजनक स्तर तक बढ़ गई है। नशे में धुत होना, मारपीट

करना, छोटे-बड़े अपराध करना आदि प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है।

सभी व्यसनों का असर बुरा होता है। तंबाकू के सेवन से मुंह का कैंसर, रक्तवाहिनी की बीमारियां; धूम्रपान से फेफड़ों की बीमारियां व कैंसर एवं हृदय रोग होते हैं। शराब से मज्जासंस्था, यकृत व जठर आदि अवयवों पर बुरा असर होता है। ब्राउन सूगर और अफीम के असर और भी खतरनाक होते हैं।

व्यसन को यदि हम किसी का व्यक्तिगत मामला कहकर नजरअंदाज करते हैं तो उसके बढ़ने का खतरा और भी बढ़ता जाता है। स्वास्थ्य-शिक्षा, मनोरंजन के अन्य साधन (खेलकूद आदि) ही शायद व्यसन-मुक्ति के काम में आएंगे।

हमारे देश में अनेक राज्यों में महिलाओं ने शराबबंदी का आंदोलन किया व वहां की सरकारों को शराबबंदी लागू करने पर मजबूर किया। आंध्र प्रदेश का उदाहरण सबसे अधिक उल्लेखनीय है। शराब पीने वाले व्यक्ति के लिए हानिकारक तो है ही, यह पूरे परिवार को भी बरबाद करती है। महिलाओं की जिंदगी सबसे अधिक प्रभावित होती है। इसलिए वे इसके खिलाफ आवाज उठाती हैं इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

लेकिन पुरुषों की शराब पीने की इच्छा भी उतनी ही तीव्र होती है, इसलिए चोरी-चोरी छिपकर पीने की व साथ-साथ अपराध की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। राज्य सरकारें भी राजस्व कम होने की वजह से धीरे-धीरे शराब की दुकान खोलने हेतु लाइसेंस देती हैं। पांडुरंग शास्त्री आठवले के 'स्वाध्याय आंदोलन' को लोकशिक्षा की वजह से शराबमुक्ति में सफलता मिली। आखिरकार यही टिकाऊ इलाज है।

तंबाकू, सिगरेट आदि की वजह से सरकार को भरपूर राजस्व मिलता है। इसका व्यापार बहुत बड़ा होता है। धूम्रपान के खतरे की

लोगों को सूचना देना, सरकारी दफ्तरों में व सार्वजनिक जगहों पर धूम्रपान की मनाही करना आदि इलाज सीमित हैं फिर भी वे आवश्यक हैं।

दुर्घटनाओं से बचो

भारत में हर 42 वाहनों के पीछे एक दुर्घटना होती है और मरने वाले हर इंसान के पीछे कई जख्मी होते हैं। भारत एक दुर्घटना-प्रवण देश है। पूरी दुनिया में हमारे यहां सबसे ज्यादा दुर्घटनाएं होती हैं। इसमें सबसे अधिक हैं सड़क पर होने वाली दुर्घटनाएं।

सड़क दुर्घटनाएं तीन कारणों से होती हैं। खराब व अयोग्य सड़कें, वाहनों का सही रखरखाव न होना व चालक की लापरवाही। इनमें से सड़कों की मरम्मत की जिम्मेदारी सरकार की है लेकिन वाहन चलाने व उसकी ठीक देखभाल करने की जिम्मेदारी तो हमारा ही काम है। है न?

हमारे देश में अधिकतर वाहनचालक कम पढ़े-लिखे होते हैं। यातायात के संकेतों को वे अक्सर नजरअंदाज करते हैं। यातायात के मामूली नियमों का पालन न करना, रात के समय सामने से आने वाले वाहन पर तेज रोशनी डालना व चालक की आंखें धुंधली करना, शराब पीकर वाहन चलाना, झपकी आते हुए भी गाड़ी चलाते रहना, तेज रफ्तार से गाड़ी चलाना, कम उम्र के नौसिखिया चालक होना आदि कई आपत्तिजनक बातें हम रोजाना देखते हैं। इन वजहों से निरपराध लोग मारे जाते हैं। इतना ही नहीं, परिवारों के मुखिया के मारे जाने से वे परिवार निराश्रित हो जाते हैं।

आजकल ग्रामीण इलाकों में जीप में 15-20 लोगों को भर कर नौसिखिये चालक द्वारा बेलगाम तरीके से वाहन चलाना एक आम बात हो गई है। अपर्याप्त व लापरवाह यातायात व्यवस्था,

व्यक्तिगत लाभ के लिए लोकहित व कर्तव्य को नजरअंदाज करने वाले पुलिसकर्मी दुर्घटनाओं के लिए जिम्मेदार हैं।

छोटे बच्चों की दुर्घटनाएं, बिजली का करंट लगना, जानवरों का काटना, सर्पदंश, जलना, डूबना आदि किस्म की दुर्घटनाएं भारत में सबसे अधिक होती हैं। वे टाली जा सकती हैं, लेकिन उसके लिए कोशिश करना आवश्यक है। नए जमाने में इस तरह की दुर्घटनाओं के लिए कोई स्थान नहीं है, यह हमें ध्यान रखना होगा।

साक्षरता, शिक्षा व स्वास्थ्य-शिक्षा

नई दुनिया में अब ज्ञान का आदान-प्रदान ही मुख्य मंत्र होने वाला है। चारों ओर कम्प्यूटर क्रांति छा रही है। ऐसे में निरक्षर व्यक्ति उसका फायदा कैसे उठा सकता है? स्वास्थ्य की रक्षा भी शिक्षा पर निर्भर होगी। एक ही रात में सबको शिक्षित करना संभव नहीं है, फिर भी आज नहीं तो कल 100% शिक्षा (प्राथमिक शिक्षा) का लक्ष्य हासिल करना ही होगा। आज की परिस्थिति में न केवल शिक्षा का दर्जा घट गया है, बल्कि स्कूल में भर्ती न होने वालों व शिक्षा बीच में ही छोड़ने वालों की संख्या बढ़ रही है। उनमें भी लड़कियां अधिक होती हैं।

प्राथमिक शिक्षा के दौरान ही स्वास्थ्य के बारे में पाठ पढ़ाना उचित होगा। इसी के साथ उसे अमल में लाने के व्यावहारिक तरीके भी स्कूल में ही अपनाए जाने चाहिए। बच्चे जो स्कूल में पढ़ेंगे उसी को भविष्य की जिंदगी में अपनाएंगे। वे ही कल के नागरिक होने वाले हैं। "नई शिक्षा सफाई से शुरू होती है," इस बात को गांधी जी ने कहा था। इसमें बहुत बड़ा अर्थ छिपा हुआ है।

स्कूली स्वास्थ्य-शिक्षा के पाठ में नए-नए विषय आना आवश्यक है। व्यक्तिगत और आसपास की सफाई के साथ-साथ, अच्छी खुराक, बच्चों को होने वाली आम बीमारियां जैसे—दस्त, पेट के कीड़े

आदि के बारे में पर्याप्त जानकारी होनी आवश्यक है। माध्यमिक स्कूल में सही उम्र में यौन शिक्षा देना भी आवश्यक है। भारत सरकार ने उसे हालांकि स्वीकार किया है, फिर भी यह कार्यक्रम अभी तक शुरू नहीं हुआ है। यह काम जिम्मेदारी व विशेष संवेदना से करना होगा। यौन संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए इस तरह की शिक्षा आवश्यक है।

दुर्घटनाओं को रोकने के लिए सड़क पर सही व्यवहार करने की मनोवृत्ति तैयार करना आवश्यक है। विद्यालयी शिक्षा के आखिरी दिनों में औपचारिक व अनौपचारिक दोनों तरीकों से शराब व धूम्रपान के खतरों के बारे में बच्चों को समझाना जरूरी है। इसी उम्र में बाजार, होटल, बस, रेलवे, स्कूल आदि जगहों पर सफाई रखने के बारे में उनकी मनोवृत्ति बनाई जा सकती है।

कल के और आज के जो-जो आह्वान हम देख रहे हैं, उन पर स्कूली जीवन में ही काम शुरू करने के अलावा कोई और चारा नहीं है। न केवल स्कूल में बल्कि गांव-गांव तक स्वास्थ्य शिक्षा का प्रसार करना, हम सब की जिम्मेदारी है। स्कूल, सरकारी स्वास्थ्य केंद्र, निजी दवाखाने, ग्राम पंचायतें, प्रौढ़ साक्षरता के क्लास, अवकाश प्राप्त शिक्षकगण आदि सबका यह कर्तव्य बनता है।

गांव-गांव में अखबार का प्रसार होगा तभी उसका लाभ उठाया जा सकता है। टी. वी. अब दूर-दूर तक पहुंच गया है। इस प्रभावी माध्यम का उपयोग भी स्वास्थ्य के बारे में जानकारी देने वाले कार्यक्रम व इश्तिहार दिखाकर किया जा सकता है।

स्वास्थ्य के बारे में शिक्षा व सही जानकारी बढ़ाने का काम सकारात्मक प्रयत्नों से ही हो सकता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य केवल शिक्षा के माध्यम से ही नहीं हासिल किया जा सकता है। इसके लिए पूरक अर्थव्यवस्था व अन्य साधनों की भी आवश्यकता है। बहरहाल,

कुछ चीजें केवल स्वास्थ्य-शिक्षा से ही हासिल हो सकती हैं।

कम्प्यूटर युग में पहले असंभव समझी जाने वाली चीजें भीं अब संभव हो रही हैं। पांच-दस सालों में कम्प्यूटर गांव-गांव तक पहुंचेगा। सब तरह की आवश्यक जानकारी लोग इससे हासिल कर पाएंगे। इतना ही नहीं, स्वास्थ्य-शिक्षा भी इससे पाई जा सकती है। अब कम्प्यूटर बात भी करने लगे हैं। कुछ दिनों बाद हमारी कही हुई बात समझकर वे जवाब भी देने लगेंगे। यह सूचना का युग है। कम्प्यूटर की वजह से यह युग अभी से शुरू हुआ है। गांवों में वह अब तक नहीं दिख रहा है क्योंकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था अभी तक उस स्तर पर नहीं पहुंची है। इस कम्प्यूटर युग में स्वास्थ्य-शिक्षा ही नहीं बल्कि संपूर्ण रोगनिदान व बीमारी से बचाव के तरीके भी बताए जा सकते हैं। लेकिन गांवों में इसका लाभ उठाने के लिए दो बातें होना आवश्यक हैं। एक, हमारी अर्थव्यवस्था कम्प्यूटरवाहक होनी चाहिए व दो, साक्षरता तथा शिक्षा का स्तर उतना बढ़ना चाहिए।

व्यायाम और खेलकूद

जैसे-जैसे मानव जाति उन्नत हो रही है वैसे-वैसे मनुष्य अपने शारीरिक श्रम कम करता जा रहा है व प्राकृतिक ऊर्जा स्रोतों पर उसकी निर्भरता बढ़ रही है (जैसे कि बैल, घोड़ा, बिजली, सूर्यप्रकाश, कोयला, खनिज तेल, आण्विक ऊर्जा इत्यादि)। श्रम कम होने से शरीर की ताकत कम होने का खतरा बढ़ता है। कुछ अलग किस्म की बीमारियां बढ़ती हैं(जैसे—मधुमेह, हृदय रोग आदि)।

इसका इलाज है नियमित व्यायाम व खेलकूद। बच्चे छोटी उम्र में लगातार शरीर को हिलाते रहते हैं। इसके बाद हमारा शरीर केवल खाने-पीने के लिए व अन्य सुविधाओं का उपभोग करने के लिए है हम यही मानकर चलते हैं। पूरी दुनिया में सबसे कम समय

व्यायाम व खेलकूद में लगाने वाला कोई समाज है तो वह है भारतीय समाज।

आजकल देहातों में भी व्यायाम व खेलकूद कम होते जा रहे हैं। सिर्फ स्कूली जीवन में अथवा जवानी में ही उसकी आवश्यकता होती है यह एक और गलतफहमी है। दरअसल, बूढ़े, जवान, बालक सभी को व्यायाम-खेलकूद की जरूरत होती है। उसके बिना निरोग रहना मुश्किल है यह ध्यान में रखना चाहिए।

श्रम करने वाले व्यक्ति को व्यायाम की जरूरत नहीं है इस बात में भी सच्चाई नहीं है। उसे अलग किस्म के व्यायाम की जरूरत होती है। लेकिन लकड़ी तोड़ने वालों, पत्थर फोड़ने वालों, निर्माण मजदूरों, लुहार, बढ़ई का काम करने वालों को, यानी जो शारीरिक मेहनत का काम करते हैं, उन्हें थकाने वाले व्यायाम की जरूरत नहीं होती है।

शारीरिक व्यायाम व खेलकूद के अनेक उद्देश्य होते हैं। मनोरंजन, उत्साह इसी के साथ शारीरिक बल-क्षमता बढ़ाना, जोड़ों एवं अन्य अवयवों में लचीलापन रहना, हृदय निर्दोष रहना, बिना थके काम करते रहने की क्षमता होना, पेट के अवयवों की हलचल ठीक होना, चरबी न बढ़ना आदि अनेक बातों की आवश्यकता को देखते हुए कम से कम 15-20 मिनट व्यायाम करना बहुत जरूरी है। बीमार व बुजुर्ग व्यक्ति को सिर्फ चलने का व्यायाम काफी है लेकिन अन्य लोगों को थकाने वाले व्यायाम की जरूरत होती है। महिलाओं को भी पुरुषों जैसे ही व्यायाम व खेलकूद की जरूरत होती है। गर्भावस्था में व बच्चे के जन्म के बाद कुछ खास प्रकार के व्यायाम करने चाहिए। इससे सारा शरीर खासकर प्रजनन-तंत्र अच्छा रहेगा।

तेज चलना, तैरना, साइकिल चलाना, दौड़ना, रस्सी कूदना, खो-खो, हॉकी, फुटबॉल खेलना, पर्वत चढ़ना आदि सब अच्छे व्यायाम

के तरीके हैं। योगासन कुछ दूसरे किस्म का व्यायाम है। उसका उद्देश्य शरीर के अंदर के स्नायु मजबूत करने का होता है। सूर्य नमस्कार अपने आप में सर्वांगीण व्यायाम प्रकार है। बिना व्यायाम के स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है।

पर्यावरण और प्रदूषण

हमारे इर्द-गिर्द की जमीन, पानी, हवा, जीव-सृष्टि आदि मिलाकर पर्यावरण बनता है। मानव के स्वास्थ्य व पर्यावरण का आपस में अटूट संबंध है। पर्यावरण के लिए विकास की प्रक्रिया को रोकने की जरूरत नहीं है। हां, यह नहीं भूलना चाहिए कि कुछ बातों पर विशेष ध्यान देना होगा। देहातों में पर्यावरण अच्छा ही होता है ऐसा आज तक लोग समझते थे। लेकिन यह सच नहीं है। वहां वाहन, कारखाने कम होने की वजह से प्रदूषण कम होता है यह बात ठीक है, लेकिन अन्य कई तरीकों से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है।

धरती पर से पेड़-पौधों का आच्छादन कम हो गया है। इससे जमीन पर धूप बढ़ती जाती है व नदियां मिट्टी से भर जाती हैं। सिंचन के लिए पानी का वाष्प होना अच्छा होता है, लेकिन कहीं-कहीं जमीन अधिक क्षारयुक्त बनती जा रही है। झरनों, नहरों, नदियों का पानी पीने योग्य नहीं रहा है क्योंकि शहरों तथा गांवों से आ रहा गंदा पानी उसमें मिल रहा है। इस दूषित पानी को इस्तेमाल करने से कई प्रकार की संक्रामक व अन्य बीमारियां फैल रही हैं। इस प्रकार के दूषित पानी से कहीं-कहीं कुएं का पानी भी इस्तेमाल के लायक नहीं रह गया है। जब पीने का पानी ही शुद्ध न हो तो स्वास्थ्य की रक्षा कैसे होगी?

वैसे तो देहातों में हवा का प्रदूषण आम तौर पर कम है लेकिन धूल की परेशानी रहती है। जमीन से घास, हरियाली का

आच्छादन नष्ट हो जाएगा तो इस प्रकार की परेशानी बढ़ती ही जाएगी।

आजकल हर जगह माइक, लाउडस्पीकर लगाने का फैशन बढ़ रहा है। घरेलू समारोह, शादी-ब्याह, प्रार्थना स्थल, मंदिर, चुनाव, गणेशोत्सव जैसे धार्मिक समारोह आदि अनेक अवसरों पर बेवजह लाउडस्पीकर बजाने की लोगों की आदत बन चुकी है। दरअसल, पुलिस व पंचायतों को इस आदत को बदलने के लिए कदम उठाने चाहिए। वरना ग्रामीण इलाकों में शोर-शराबा बढ़ता जाएगा जो पहले वहां नहीं होता था। शोर-शराबे से थकान, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा, बहरापन आदि परेशानियां होती हैं।

कीटनाशक व खर-पतवारनाशक दवाइयों से होने वाला प्रदूषण एक नई समस्या पैदा कर रहा है, जिसका हल हमें ढूंढ़ना पड़ेगा। आज की कृषि अर्थव्यवस्था इन रासायनिक दवाइयों पर बहुत ज्यादा निर्भर है। लेकिन आखिरकार ये सब जहरीली दवाइयां हैं व मनुष्य के शरीर पर उनका भला-बुरा असर होता रहता है। आत्महत्या के लिए कीटनाशकों का उपयोग एक अलग समस्या बन गई है। लेकिन मानव शरीर में उसका जहर धीरे-धीरे फैलता जा रहा है, यह एक गंभीर बात है।

इनमें से कई दवाइयां सब्जियों व फलों पर छिड़की जाती हैं। छिड़काव की मात्रा का उचित पालन नहीं किया जाता है। मंडी में उन्हें ले जाने से कितने दिन पहले यह छिड़काव बंद होना चाहिए इसकी सूचना दवाइयों के साथ दी जाती है, लेकिन उस पर गंभीरता से अमल नहीं किया जाता है। इसलिए मंडी में आई सब्जियों पर जरूरत से ज्यादा मात्रा में ये जहरीली दवाइयां पाई जाती हैं। इन्हें छिड़कने वाले कर्मियों पर भी उसका बुरा असर होता है। खुद को बचाने वाले साधन उनके पास नहीं होते हैं। कीटनाशकों का

पर्यावरण पर गहरा दुष्प्रभाव पड़ता है। जहर छिड़के हुए कीटाणु खाने से पक्षी कम होते हैं। इतना ही नहीं, तितलियां, भंवरे जैसे परागण क्रिया करने वाले कीटाणुओं की संख्या भी कम होती जा रही है। प्रकृति की अन्नशृंखला पर इसका दूरगामी प्रभाव पड़ रहा है।

अलग तरह की कृषि-पद्धति के निकट भविष्य में सफल होने की संभावना नहीं दिख रही है, लेकिन भविष्य में वह जरूर सफल होगी। दवाइयां छिड़की हुई व रासायनिक खाद से उपजी हुई चीजों की मांग धीरे-धीरे कम होती जाएगी व सामान्य तरीके से पैदा किए गए अनाज का अधिक महत्त्व होगा, तब धीरे-धीरे हम संतुलित खेती की ओर बढ़ेंगे। इसके लिए कीटाणु और रोग से मुक्त बीज विकसित करना, यह एक उपाय दिख रहा है।

3

स्वास्थ्यवर्द्धक कार्यक्रम

विशेष राष्ट्रीय कार्यक्रम

सरकार समय-समय पर स्वास्थ्य की रक्षा के लिए व उसे बेहतर बनाने के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करती रहती है। चेचक को ऐसे ही एक कार्यक्रम के तहत पूरी तरह उन्मूलित किया गया। इसी प्रकार के अन्य कार्यक्रम हैं। टीकाकरण, मातृ एवं शिशु रक्षा, परिवार कल्याण; मलेरिया, फाइलेरिया, नेत्रहीनता, हैजा, क्षयरोग (टी.बी.), कुष्ठ रोग (लेप्रोसी) आदि का उन्मूलन; पीने के पानी की योजना, आंगनवाड़ी योजना, पोषक आहार योजना आदि कार्यक्रमों के लिए केंद्र सरकार राज्य सरकारों को पूर्णतः अथवा आंशिक मदद करती है। इनमें से ज्यादातर कार्यक्रम प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों से कार्यान्वित किए जाते हैं।

इनमें से कुछ कार्यक्रमों को बहुत अच्छी सफलता मिली है। चेचक उन्मूलन एक विश्व स्तर का कार्यक्रम था, जिसकी वजह से चेचक का उन्मूलन पूरी दुनिया से हो पाया। टीकाकरण कार्यक्रम को ठीक-ठाक सफलता मिली। इसकी तुलना में कुष्ठ रोग, टी.बी., नेत्रहीनता, फाइलेरिया(फीलपांव), घेघा रोग (थायरायड) आदि कार्यक्रम सफल हुए ऐसा नहीं कहा जा सकता।

परिवार नियोजन कार्यक्रम को शुरू में अच्छी सफलता मिली व जनसंख्या वृद्धि की गति भी मंद हुई, लेकिन केरल, तमिलनाडु का

अनुभव छोड़ दिया जाए तो यह कार्यक्रम संतोषजनक परिणाम दिखाने वाला नहीं है। एड्स एवं यौन संक्रामक रोगों पर नियंत्रण रखने वाले कार्यक्रम हाल में शुरू हुए हैं व इनका आह्वान बहुत बड़ा है। घेघा रोग नियंत्रण के लिए नमक के माध्यम से आयोडीन देने का कार्यक्रम महाराष्ट्र, केरल, गोवा को छोड़कर बाकी सब जगहों पर लागू किया गया है। आंगनवाड़ी कार्यक्रम तथा समाज कल्याण विभाग की ओर से व पोषक आहार योजना शिक्षा विभाग की ओर से लागू किया जा रहा है।

इतनी सारी योजनाएं होते हुए भी उनका संतोषजनक प्रभाव, किसी एकाध अपवाद के अलावा, नहीं दिख रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि गांवों में सक्षम स्वास्थ्य केंद्र नहीं हैं। उपकेंद्र की व्यवस्था पर्याप्त नहीं है। दूसरा कारण है कि स्वास्थ्य के सुधार के लिए रहन-सहन का स्तर (सफाई, आहार, साफ पानी, शिक्षा) बेहतर बनाने की बुनियादी शर्त को पूरा नहीं किया जा रहा है। ये केवल सरकारी कार्यक्रम नहीं हैं बल्कि राष्ट्रीय कार्यक्रम हैं जिन्हें लोगों को अपनी जीवनशैली में शामिल करने की आवश्यकता है। लोगों के सहयोग की सिर्फ घोषणाएं काम नहीं आएंगी।

बच्चों के लिए स्वास्थ्य-कार्यक्रम

राष्ट्र का भविष्य आज के बच्चों पर निर्भर करता है। अच्छा स्वास्थ्य व अच्छी शिक्षा उसकी बुनियाद होती है। जिस तरह हर माता-पिता की इच्छा होती है कि उनका बच्चा स्वस्थ, हट्टा-कट्टा व सुशिक्षित हो, उसी तरह राष्ट्र के स्तर पर सभी की ऐसी ही इच्छा होनी चाहिए।

कुपोषण से शरीर का न बढ़ना हमारे देश की एक गंभीर समस्या है। हम शायद इसे महसूस नहीं करते हैं लेकिन दुनिया के एक-दो देशों को छोड़ दिया जाए तो भारत में सबसे अधिक कुपोषित

बच्चे हैं। वजन से अधिक लंबाई का माप इसे सही मायने में दर्शाता है। विदेशी नागरिकों एवं बच्चों से तुलना करने पर हमारा औसत शारीरिक विकास कम दिखाई देता है। एक समय के नाटे समझे जाने वाले राष्ट्रों में औसत लंबाई बढ़ी हुई दिखाई दे रही है। हमारे बच्चों के जीवन में भी ऐसा ही होना चाहिए।

छह साल के बच्चों के लिए आंगनवाड़ी एक प्रमुख कार्यक्रम है। लेकिन वह सिर्फ पिछड़े क्षेत्रों में ही लागू हो रही है। (प्राथमिक) स्कूली बच्चों के लिए पोषक आहार योजना तमिलनाडु में अच्छी तरह से लागू की गई।

दरअसल, यह योजना छह साल से कम उम्र के सभी बच्चों के लिए है लेकिन वास्तव में उसमें तीन साल से ऊपर का बच्चा ही आता है। कुपोषण का असर उस पर इससे पहले ही होता है। आंगनवाड़ी की वजह से कुपोषण की तीव्रता कुछ हद तक कम हुई है यह भी एक सच है।

टीकाकरण एक महत्त्वपूर्ण योजना है। टिटेनस, काली खांसी, डिफ्थीरिया, पोलियो, टी.बी., खसरा इन छह महत्त्वपूर्ण बीमारियों की रोकथाम के लिए बनाया गया यह कार्यक्रम है। भारत में टीकाकरण का आंकड़ा 80-85% जितना है फिर भी वह अन्य देशों की तुलना में कम ही है। सकारात्मक बात यह है कि इन बीमारियों का प्रभाव बच्चों में काफी कम हो गया है। अब डिफ्थीरिया कम ही देखने को मिलता है। पोलियो का उन्मूलन पूर्णतः संभव है इसलिए इस अभियान पर (दिसंबर व जनवरी माह में) ज्यादा जोर दिया जा रहा है।

फिर भी भारत में बाल-मृत्यु की दर ज्यादा ही है। पैदा हुए बच्चों में से 8%बच्चों की एक साल के अंदर मृत्यु हो जाती है। यह दर तमिलनाडु व केरल में कम है लेकिन उत्तर भारत में ज्यादा है।

महिलाओं के लिए कार्यक्रम

देहातों में लड़कियों की शादी सोलह-सत्रह साल में ही हो जाती है व बीस-पच्चीस की उम्र तक वे दो-चार बच्चे पैदा करने के बाद नलबंदी (बंध्याकरण) भी करवा लेती हैं। यदि दो-तीन लड़कियां ही हुई तो चुपचाप गर्भजांच करवाकर पेट में यदि लड़की का गर्भ है तो गर्भपात करवा लेती हैं यह बात भी आम है।

प्रसव के समय उनकी होने वाली दुर्दशा अभी भी कायम है। 60-70% गर्भवती महिलाएं अंधेरे कोने में बच्चे पैदा करती हैं व उनकी मदद के लिए गांव की दाई के अलावा कोई नहीं होता है। स्कूल में शिक्षा प्राप्त करते समय जिन लड़कियों को माहवारी आती है, उन्हें भी माहवारी, गर्भधारण आदि के बारे में ज्ञान नहीं के बराबर होता है। ऐसी लड़कियां आगे के दो-तीन साल में ही वैवाहिक जीवन का सामना भी करती हैं। यौन संक्रामक रोगों के आज के जमाने में कई लड़कियों को यह सब चुपचाप सहना पड़ता है। बीमारियों की वजह से यदि उसकी आंखों की रोशनी चली जाती है तो उसे मानसिक यातनाएं या कभी-कभी सौतन को भी भुगतना पड़ता है।

ग्रामीण इलाकों में महिलाओं की बीमारियों के जानकार लोग नहीं के बराबर होते हैं, फिर वहां की महिलाएं अपनी परेशानियां व दुख-दर्द किसको बताएंगी? पूरे देश में तकरीबन ऐसे ही हालात हैं, कुछ जगहों पर ज्यादा ही भयानक स्थिति है। इसी पृष्ठभूमि में हमें महिलाओं के लिए चल रहे स्वास्थ्य विषयक कार्यक्रमों की समीक्षा करनी होगी।

महिलाओं की कुछ खास बीमारियां होती हैं। स्त्री-जनन-तंत्र की बीमारियां, यौन संबंधी संक्रामक बीमारियां, गर्भावस्था से जुड़ी बीमारियां आदि बीमारियों की संख्या कम नहीं हैं। लेकिन इनका देहातों में न निदान होता है न इलाज। ग्रामीण नर्स को हम इसकी

शिक्षा देकर कुछ सेवाएं उपलब्ध करा सकते हैं, लेकिन अब तक हमने यह नहीं किया है।

प्रसूति (डिलिवरी) प्रशिक्षित हाथों से हो यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। भारत में प्रति एक हजार प्रसूतियों में चार की जान सही उपचार के अभाव में चली जाती है। इनमें से कम से कम दो की मृत्यु पहले से सावधानी बरतने से टाली जा सकती है। लेकिन हम यह नहीं कर पाए हैं। जिसका हम पहले से निदान नहीं कर सकते हैं वह बात है प्रसव के बाद होने वाला रक्तस्राव व कीटाणुसंसर्ग। इनमें से यदि रक्तस्राव की स्थिति हो तो तुरंत खून चढ़ाना, शल्यक्रिया आदि आपातकालीन इलाज जरूरी हैं। यह सिर्फ सुसज्जित अस्पतालों में ही



किया जा सकता है। ग्रामीण अस्पतालों में इन सुविधाओं का होना अति आवश्यक है। केवल प्रशिक्षित दाई पर हम निर्भर नहीं रह सकते।

लड़कियों की शादी कम उम्र में होना, जल्दी बच्चे होना, सही खुराक न मिलना आदि सामाजिक समस्याएं हैं। केरल व तमिलनाडु में इन्हें लोकशिक्षा के माध्यम से सुलझाया गया है। अर्थात् कुपोषण की समस्या सिर्फ लोकशिक्षा से कुछ हद तक ही सुलझेगी, पूर्णतः नहीं।

स्कूल में जाने वाली लड़कियों की संख्या अच्छी हो, वे बीच में ही पढ़ाई न छोड़ें तथा दसवीं-बारहवीं के बाद उन्हें शिक्षा के सभी अवसर प्राप्त हों इसके लिए खास कोशिशें करनी पड़ेंगी, वरना उनकी कम उम्र में ही शादियां होती रहेंगी। जब तक पूर्ण रूप से उनका शारीरिक विकास नहीं होता है तब तक उनकी शादी न करने की सावधानी समाज को बरतनी चाहिए।

यौन शिक्षा की घोषणा तो हुई लेकिन इस विषय में कुछ प्रगति नहीं है। हाई स्कूलों में इसे शुरू करना चाहिए। इसके लिए अच्छे पोस्टर, किताबें, फिल्में व प्रशिक्षित शिक्षक व शिक्षिकाएं होना जरूरी है। स्त्री शरीर-संरचना, माहवारी, गर्भधारण, गर्भपात, प्रसूति, परिवार नियोजन के साधन, यौन रोग आदि से संबंधित महत्त्वपूर्ण विषयों पर लड़कियों को सही समय पर उचित जानकारियां देना जरूरी है। दरअसल लड़कों के लिए भी यह कार्यक्रम चलाना जरूरी है।

भारत में कई सालों से महिलाओं की संख्या पुरुषों से कम है। 1901 में एक हजार पुरुषों के पीछे 979 महिलाएं थीं जो 1991 में घटकर 927 रह गई। अब सन् 2001 में यह थोड़ा बढ़कर 933 हुआ है। दरअसल, लड़कियां जन्मतः अधिक सहनशील होती हैं व

उनकी रोगप्रतिरोधक ताकत भी अधिक होती है, लेकिन उनकी उपेक्षा व यातनाओं द्वारा हमने उनकी मृत्यु का अनुपात अधिक रखा है। उन्हें कम आहार देना, बीमारी में समय पर इलाज न करना यह तो है ही, ऊपर से शादी के बाद विविध प्रकार के अत्याचार, प्रसूति के समय मृत्यु आदि की वजह से महिलाओं की संख्या कम है। एक समय था जब परिवार का नाम महिलाओं के नाम से पहचाना जाता था। वे परिवार की मुखिया होती थीं। लेकिन आज क्या स्थिति है?

आज भी महिलाएं पुरुषों की अपेक्षा खेतों में, घरों में अधिक काम करती हैं। जीवन भर वे कमरतोड़ मेहनत करती हैं व परेशानियां उठाती हैं। चलिए, सभ्य समाज में, इक्कीसवीं सदी में यह दोहरा व्यवहार खत्म होगा इसकी कोशिश करते हैं।

परिवार कल्याण

आजादी के बाद के बीस-पच्चीस वर्षों तक एक परिवार में 5-6 बच्चे होना एक आम बात थी। 'आठ पुत्र हों' यह आशीर्वाद दिया जाता था। जन्म-दर अधिक थी तो मृत्यु-दर भी अधिक थी, इसलिए कुल आबादी सदी दर सदी उतनी ही रही। लेकिन आगे चलकर नए चिकित्सीय आविष्कार, शिक्षा, सड़कें आदि सुधारों की वजह से मृत्यु की दर बीती सदी में तेजी से कम होती गई। लेकिन जन्म-दर उसी अनुपात में कम नहीं हुई। उदाहरण के लिए, 1901 में जन्म-दर एक हजार पर 50 के करीब थी व मृत्यु-दर 42 के करीब। यानी हर एक हजार अबादी पर 8 नए जन्म होते थे जो 1991 में बढ़कर 29 जन्म व घटकर 10 मृत्यु, यानी 19 जन्म की बढ़ोतरी हुई।

आधुनिक प्रगति की वजह से मृत्यु-दर कम हुई। उसी प्रकार से, जन्म-दर भी घटेगी तो जनसंख्या नियंत्रण में रहेगी। आजादी के समय हमारी अबादी 33 करोड़ थी जो 2001 में 1 अरब से अधिक

हो चुकी है। जनसंख्या वृद्धि से गरीबी बढ़ती है या नहीं यह एक विवाद का मुद्दा है, लेकिन प्राकृतिक संसाधनों (जमीन, पानी, लकड़ी, ईंधन आदि) का प्रति व्यक्ति अनुपात कम होता है यह बात सच है।

जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाना जिस प्रकार से एक राष्ट्रीय जरूरत है उसी प्रकार से छोटा परिवार होना हरेक की पारिवारिक जरूरत होनी चाहिए। महिलाओं की बार-बार प्रसूति से मुक्ति होनी चाहिए। मृत्यु का अनुपात अब पहले जैसा नहीं रहा, वह कम हो गया है। पहला बच्चा बीस साल से कम उम्र में नहीं होना चाहिए। औरत की सेहत के लिए यह अच्छा है। इतना ही नहीं, इससे जनसंख्या वृद्धि पर रोक भी लगेगी। औसतन दो से अधिक बच्चे नहीं होने चाहिए और उनमें भी पर्याप्त फासला हो(कम से कम पांच साल), इतना सीधा-सादा यह कार्यक्रम है। शिक्षित व धनी परिवारों में इस विचार का पालन होता है। सबको पर्याप्त रोजगार, बचत के अवसर, कल की चिंता कम होना, स्त्री-पुरुष समानता व बच्चों पर निर्भर न होना इन बातों की गारंटी होने से गरीब परिवारों का आकार निश्चय ही कम होगा।

आधुनिक दुनिया में परिवार नियोजन के कई बेहतर साधन उपलब्ध हैं। अपनी-अपनी पसंद और शरीर के अनुकूल उसे इस्तेमाल किया जा सकता है। स्त्रियों के लिए खाने की गोलियां, कॉपर टी तथा पुरुषों के लिए कंडोम आदि भरोसेमंद तरीके हैं। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में जिन्हें इसकी जरूरत है उनमें से 20 प्रतिशत दंपति भी इन साधनों का इस्तेमाल नहीं करते हैं। जल्दी-जल्दी बच्चे पैदा करके 3-4 बच्चे के बाद ही नसबंदी/नलबंदी कराने पर उनका अधिक जोर रहता है। दो बच्चों में अंतर बढ़ाना यह राष्ट्र व परिवार के कल्याण और बच्चों के उचित विकास के लिए आवश्यक है।

स्थायी गर्भनिरोध में भी स्त्रियों की नलबंदी से अधिक

पुरुष-नसबंदी ज्यादा आसान व कम परेशानियों वाली होती है। लेकिन पुरुष इसकी जिम्मेदारी औरत पर ही छोड़ देते हैं। संतति-नियोजन जितनी महिलाओं की आवश्यकता है उतनी ही पुरुषों की भी यह बात हम कब समझेंगे?

यौन-संक्रामक बीमारियां

गर्मी, धात आदि बीमारियों के नाम हम सुनते हैं। इन्हें गुप्त रोग कहा जाता है क्योंकि वह गुप्त जगह (लिंग या योनि) पर होते हैं व उन्हें गुप्त रखा जाता है। गर्मी, धात आदि के साथ तीन-चार और भी बीमारियां हैं जो अंग्रेजों के जमाने से चली आई हैं। इसे यूरोपियन लोग अपने साथ लाए थे इसलिए उन्हें 'फिरंगी' कहा जाता था। अब इस फेहरिस्त में करीब बीस बीमारियां दर्ज हैं।

इन्हीं बीमारियों में एक भयंकर बीमारी जुड़ गई है, 'एड्स'। इस बीमारी का इलाज नहीं है, सिर्फ कुछ सावधानियां बरतने से उससे बचा जा सकता है। भारत में यह बीमारी बहुत तेजी से फैल रही है ऐसा विशेषज्ञों का मानना है। एड्स की ही तरह एक किस्म का जहरीला पीलिया (हेपाटाइटिस-बी) भी फैल रहा है। वह भी उतना ही जानलेवा है। इन दोनों को छोड़कर यौन संबंधित अन्य बीमारियां समय पर रोगनिदान व इलाज करने से ठीक हो सकती हैं।

ये बीमारियां मुख्य रूप से यौन संबंधों से फैलती हैं। यानी, इन रोगों से ग्रस्त किसी व्यक्ति से यौन-संबंध होने से दूसरे व्यक्ति उससे प्रभावित होते हैं। संबंध होने के कुछ समय बाद इसके लक्षण दिखाई देते हैं। पेशाब के रास्ते से मवाद बहना, जननेंद्रिय पर अथवा योनिमार्ग में जख्म होना, जांघ में ग्रंथि पैदा होना ये उसके तीन प्रमुख लक्षण हैं। महिलाओं का एक और लक्षण है निचले उदर में दर्द होना। कभी-कभी सूजन भी आ सकती है जिससे वह बंध्या बन सकती है।

एड्स में यह लक्षण नहीं दिखते हैं। इसमें प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है व लगातार बुखार, गले में दर्द, दस्त, वजन घटना, फुंसियां आना आदि परेशानियां होती रहती हैं व अंत में मृत्यु हो जाती है। एड्स व हेपाटाइटिस-बी (यौन संक्रामक, बी जाति) दूषित खून के माध्यम से भी फैलता है।

इन सब बीमारियों का मुख्य उद्गम स्थान है वेश्यालय। वहीं से पुरुष इस रोग को जगह-जगह फैलाते हैं व अंततः अपने परिवार में लाते हैं। इसके अलावा, धात, एड्स जैसे रोग मां के खून से गर्भ में भी प्रवेश करते हैं।

यौनिक स्वेच्छाचार इन रोगों का प्रमुख कारण है इसलिए उसे टालना ही इसका उत्तम इलाज है। यदि उसे टालना बिलकुल ही संभव न हो तो कम-से-कम अनजान व्यक्ति से यौन संबंधों में कंडोम का इस्तेमाल करना अनिवार्य है।

स्कूलों में भी इस रोग के फैलने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। इसलिए समय पर यौन-शिक्षा देना जरूरी है। दूर-दूर तक सफर करने वाले ट्रक ड्राइवर व वेश्या व्यवसाय से जुड़ी महिलाओं को भी यह शिक्षा देना जरूरी है। मरीजों को खून देने वाले ब्लड बैंक व रिश्तेदारों का खून एड्समुक्त होने की जांच करवाना भी आवश्यक है।

टी.बी. और कुष्ठ रोग नियंत्रण

टी.बी. व कुष्ठ रोग मनुष्य के पुराने दुश्मन हैं। ये दोनों रोग एक ही प्रजाति के कीटाणुओं से होते हैं व सांस-नलिका से शरीर में घुसते हैं। इसी वजह से उनकी मुख्य दवा भी एक ही है। दोनों रोग अब पूर्णतः ठीक हो सकते हैं।

फिर भी सिर्फ सही दवा होने से इस पर काबू नहीं हो रहा

है। उल्टा, एड्स के साथ-साथ टी.बी. बढ़ ही रहा है। गरीबी व घटिया जीवनस्तर उसकी मुख्य वजहें हैं।

इन दोनों बीमारियों की रोकथाम के लिए राष्ट्रीय स्तर की योजनाएं हैं। टी. बी. नियंत्रण योजना के तहत मरीजों के थूक की जांच व जरूरत के अनुसार एक्स-रे किया जाता है तथा सरकारी दवाखानों में इलाज होता है। आजकल इंजेक्शन की जरूरत गिने-चुने मरीजों को ही होती है। बाकी सब नियमित दवाई खाने से ठीक हो सकते हैं।

लेकिन भारत में टी.बी. नियंत्रण कार्यक्रम काफी कमजोर रहा है। मरीजों की जांच व इलाज संतोषजनक तरीके से नहीं होता है। अब 'समक्ष उपचार' पद्धति शुरू होने जा रही है। इसमें मरीज को सप्ताह में तीन बार स्वास्थ्य कर्मचारी की उपस्थिति में दवाई खानी पड़ेगी। मुख्यतः जिनको तीन सप्ताह से अधिक समय से खांसी है, थूक में खून आ रहा है, वजन घट रहा है, ऐसी शिकायत होने पर तुरंत जांच करवाना आवश्यक है। देश में विभिन्न जगहों पर टी. बी. का अनुपात कम-अधिक है। एक हजार की आबादी में तकरीबन 30 से 50 तक क्षयरोगी (सभी प्रकार के) हैं। छोटे बच्चों में भी यह बीमारी पाई जाती है। लेकिन बी.सी.जी. टीके की वजह से उसका अनुपात घट रहा है। बच्चों में टी.बी. के लक्षण अलग होते हैं। टी. बी. का उन्मूलन सफलतापूर्वक करने के लिए लंबी लड़ाई लड़नी होगी। पहली बात, जीवन मान का स्तर बढ़ना चाहिए और संदेहात्मक मरीजों से अन्य लोगों का संपर्क घटना चाहिए। इसी तरह, एड्स का भी नियंत्रण होना चाहिए। इसके लिए सरकार को चाहिए कि वह केवल सरकारी डाक्टरों पर ही निर्भर न रहे बल्कि निजी डाक्टरों को भी इस कार्यक्रम में शामिल करे। टी.बी. का उन्मूलन पूर्णतः हो सकता है, वह भी केवल गोलियां खाकर। यह विज्ञान की देन है। आइए, इसे सफल बनाएं।

कुष्ठरोग उन्मूलन योजना

एक जमाने में इसे असाध्य माना जाता था। लेकिन अब विज्ञान की ही देन है कि उस पर काबू पाया जा सका है। इस समय प्रति एक हजार आबादी में 3 से 5 कुष्ठ रोगी पाए जाते हैं। लेकिन, यह आंकड़ा अलग-अलग राज्यों में भिन्न है। इस बीमारी के नियंत्रण के लिए कुष्ठरोग उन्मूलन योजना है। हर प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र पर कुष्ठरोग विशेषज्ञ होते हैं। वे प्रशिक्षित होते हैं व मरीज की अच्छी देखभाल करते हैं। मरीज की जांच-उपचार के अलावा वे घर-घर जाकर सर्वेक्षण भी करते हैं व लोगों को रोग के बारे में शिक्षित भी करते हैं। इस योजना का नाम इसलिए 'सर्वेक्षण, स्वास्थ्य-शिक्षा एवं उपचार' रखा गया है। ये कुष्ठ रोग विशेषज्ञ ताजे लक्षण वाले रोगियों का पता लगाकर उनका इलाज कर रहे हैं। अभी तक का रोगमुक्त होने का अनुपात 25% है जिसे और अधिक बेहतर होना चाहिए।

कुष्ठ रोग के कीटाणु एक ही प्रकार के होते हैं, फिर भी यह हर एक व्यक्ति की प्रतिरोधक शक्ति पर निर्भर करता है कि कौन कितना बच सकता है। जिनकी प्रतिरोधक शक्ति कम होती है वे इस बीमारी के जल्दी शिकार होते हैं। उनमें भी जिनके पास थोड़ी बहुत प्रतिरोधक शक्ति बची है उनकी बीमारी का स्वरूप कुछ हल्का होता है। जिनमें प्रतिरोध शक्ति बहुत ही कम हों उन्हें शरीर भर फैलने वाली बीमारी होती है और उसी से छूत लगने का खतरा बना रहता है।

इसके प्रमुख लक्षण हैं बिना खुजली के दाग, हाथ-पैर सुन्न हो जाना अथवा सिकुड़ जाना। हमें सड़कों पर दिखने वाले ऐसे रोगी अक्सर रोग की बढ़ी हुई अवस्था में मिलते हैं। ऐसे बेघर हुए रोगियों के लिए भारत में कई लोगों ने काम किया है। गांधी जी ने परचुरे शास्त्री को सेवाग्राम आश्रम में रखकर उनकी जो सेवा की थी, वह अपने आप में एक मिसाल है।

कुष्ठ रोगी को जल्दी से जल्दी पहचानकर उसका इलाज करना यही हमारा उद्देश्य होना चाहिए। जो बात विज्ञान की वजह से आसान हुई है उसे अमल में लाने की हम सब पर जिम्मेदारी है।

अंधत्व निवारण

नेत्रहीनता का दुख कोई पराया नहीं समझ सकता है। भारत में प्रति एक हजार की आबादी में 14 लोग नेत्रहीन होते हैं। यह आंकड़ा घटकर 3 तक आना चाहिए। इनमें से कुछ छोटी उम्र में ही नेत्रहीन हो जाते हैं लेकिन ज्यादातर लोग 60 साल के होने के बाद आंखों की रोशनी खो बैठते हैं। बचपन में होने वाले अंधत्व का प्रमुख कारण है विटामिन 'ए' का अभाव एवं रोहा नाम की संक्रामक बीमारी। इनमें से रोहे पर विटामिन 'ए' खिलाकर काबू पाया जा सकता है। इसके अलावा अंधत्व के और भी कई कारण हैं, जैसे—मोतियाबिंद, आंखों में लगने वाली चोट, नेत्र संदूषण (आंखों में संक्रमण), ग्लुकोमा इत्यादि।

स्कूली बच्चों में आंखों की कमजोरी बड़ी मात्रा में पाई जाती है। कॉपी अथवा बोर्ड पर लिखा हुआ दिखाई न देने की उन्हें शिकायत रहती है। राष्ट्रीय अंधत्व निवारण योजना में इस शिकायत के बारे में विविध कार्यक्रम हैं। मोतियाबिंद के लिए आपरेशन व चश्मे की सहायता से कई वृद्ध लोगों का जीवन बेहतर बनाया जा सकता है। इसके लिए समय-समय पर मोतियाबिंद शिविर लगाया जाता है व सरकारी दवाखानों में भी मुफ्त इलाज एवं आपरेशन किया जाता है।

विटामिन 'ए' हरी सब्जियां, गाजर, गोभी, पपीता, आम, सहिजन की फली आदि फल-सब्जियों में पाया जाता है। इस विटामिन के अभाव में रतौंधी, आंख की पुतली पर फोड़ा (घाव)

इत्यादि बीमारियां होती हैं। इसलिए बच्चों को छह महीने की उम्र से पांच साल की उम्र तक विटामिन 'ए' का डोज दिया जाता है। यह कार्यक्रम प्राथमिक सेवा केंद्रों में नर्स व स्वास्थ्य सेवक द्वारा चलाया जाता है। यह विटामिन शरीर में छह महीने तक टिक पाता है। रतौंधी से पीड़ित व्यक्ति को इससे लाभ मिलता है। अर्थात् भोजन में विटामिन 'ए' युक्त पदार्थों का सेवन करना बेहतर है।

स्कूल जाने वाले बच्चों को पढ़ने में दिक्कत होने पर, नजर भेंगी होने पर अथवा आंखों की कुछ शिकायत होने पर तुरंत आंखों की जांच करवाना व चश्मा लगाना आवश्यक है। लेकिन यह कार्यक्रम अभी तक ठीक तरह से शुरू नहीं हुआ है। इस परेशानी से कई बच्चों का शैक्षिक विकास धीमा होता है तथा उन्हें मानसिक यातनाएं झेलनी पड़ती हैं। कई घंटे तक लगातार टी.वी. देखने से भी नजर कमजोर हो जाती है।

जिनकी दोनों आंखों की पुतलियां खराब हैं उन पर किसी और की पुतली का कलम करने (ग्राफ्टिंग) से कम से कम एक आंख में रोशनी आ जाती है। नेत्रदान और पुतली पर कलम करना विशेष कठिन काम नहीं है। मृत व्यक्ति की आंखों पर बर्फ रखकर एक घंटे के अंदर उन्हें निकालकर नेत्रबैंक में पहुंचा दिए जाने से किसी और की आंखों में रोशनी आ सकती है। नेत्रदान जैसे इस परोपकारी कार्यक्रम को पूरे समाज को मिलकर सफल बनाना चाहिए।

मलेरिया तथा फाइलेरिया

ये दोनों रोग मच्छर के काटने से होते हैं। इसमें ठंड से शरीर कांपता है व बुखार चढ़ता है। फाइलेरिया में धीरे-धीरे हाथ-पांव पर सूजन आने लगती है और वे सख्त होने लगते हैं। मलेरिया अपने आप ठीक हो जाता है लेकिन कई बार दिमाग पर असर करके काफी नुकसान

पहुंचाता है तथा घातक भी बन जाता है। दोनों के मच्छर अलग किस्म के होते हैं। मलेरिया का मच्छर 'एनोफिलिस' कहलाता है, जिसकी पीठ सीधी होती है और वह साफ पानी के ठहराव पर पनपता है। फाइलेरिया के मच्छर क्युलेक्स किस्म के होते हैं जिनकी पीठ टेढ़ी होती है और वे गंदे पानी के ठहराव में पैदा होते हैं।

मलेरिया के कीटाणुओं की पहली बार पहचान भारत में हुई थी। भारत जैसे मौसम वाले कई देशों में यह बीमारी पाई जाती है। हर साल अनगिनत बीमारियां और मृत्यु इसके खाते में जमा होते हैं। इसलिए पूरी दुनिया में इसके उन्मूलन की योजनाएं बनाई गई थीं। उन दिनों में मलेरिया के कारण खेती करना भी मुश्किल हो गया था। लाखों लोग इस बीमारी की चपेट में आते थे और कइयों की मृत्यु तक हो जाती थी। डी.डी.टी. का छिड़काव करने और मरीज का उचित समय पर इलाज करने से यह बीमारी धीरे-धीरे घट गई। लेकिन अब वह फिर से प्रकट हो रही है। इस समय हमारे देश में हर साल तकरीबन तीस लाख लोग मलेरिया से पीड़ित होते हैं।

अब भारत सरकार ने उन्मूलन का रास्ता छोड़ दिया है और सिर्फ इलाज को ही अपना उद्देश्य बनाया है। बुखार पीड़ित मरीजों के खून की जांच घर-घर जाकर करना जारी है। जहां मलेरिया के मच्छर अधिक होते हैं वहां कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता है। मलेरिया का फैलाव रोकने के लिए ऐसे कदम उठाए गए हैं।

मलेरिया उन्मूलन के कार्यक्रम में दो-तीन बाधाएं आ रही हैं। एक, पहले के सीधे-सादे कीटाणु (v) की जगह अब नए किस्म के और अधिक घातक कीटाणु (f) पनप रहे हैं। इनके काटने से मस्तिष्क में सूजन हो जाती है अथवा मूत्राशय बंद होकर मरीज की मृत्यु हो जाती है। दूसरी दिक्कत यह है कि अब ये कीटाणु पुरानी जानी-मानी दवाइयों को बेअसर कर रहे हैं। इसलिए सिर्फ नए

प्रकार के महंगे कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग करना पड़ता है। मच्छरों की संख्या भी पानी के अधिक इस्तेमाल की वजह से तथा रेल, रोड आदि के कारण कई जगहों पर गड्ढों में पानी भर जाने से बढ़ रही है। मलेरिया के खिलाफ चल रहा युद्ध अब बहुत महंगा होता जा रहा है। ग्रामीण इलाकों में इलाज के लिए दवाइयां भी नहीं मिलती हैं। सरकारी कर्मचारी सिर्फ कुछेक मरीजों को ही दवाइयां दे पा रहे हैं।

ऐसी परिस्थिति में सिर्फ सरकार पर निर्भर न होते हुए निजी डाक्टरों एवं लोगों को अपनी ओर से पहल करना जरूरी है। जहां मच्छर पैदा होते हैं ऐसे गड्ढों को बंद करना, मच्छरदानी का इस्तेमाल करना, बुखार आने पर जल्दी इलाज करना आदि कुछ महत्त्वपूर्ण कदम हैं। इलाज के माध्यम से कीटाणुओं को पूर्णतः नष्ट करने की जिम्मेदारी डाक्टरों को अपने कंधे पर लेनी चाहिए। जिन इलाकों में घातक मलेरिया का प्रादुर्भाव है वहां के डाक्टरों की यह विशेष जिम्मेदारी बनती है।

फाइलेरिया (फीलपांव) की बीमारी भारत के पूर्वी इलाकों में विशेष रूप से होती है। इसकी शुरुआत भी ठंड व बुखार से ही होती है। जांघों में गांठ पड़ जाती है और कुछ दिनों बाद हाथ या पैर सूजने लगते हैं। जल्दी इलाज न करने से यह सूजन सख्त होती जाती है। बाद में उस पर दवाइयों का भी कोई असर नहीं होता है। जिन इलाकों में फाइलेरिया का प्रादुर्भाव है वहां किसी भी प्रकार का बुखार होने से तुरंत रात के खून की जांच करवानी चाहिए व सही इलाज शुरू करना चाहिए। इसकी इलाज की दवा हरेक सदस्य को अलग-अलग देने के बजाय यदि उसे नमक में मिलाकर खिलाया जाए तो पूरे परिवार को उसका लाभ मिलेगा।

दस्त की बीमारियां

प्रदूषित अन्न, प्रदूषित पानी एवं गंदगी पेट की कई प्रकार की बीमारियों के कारण हैं। मामूली दस्त, खूनी दस्त, हैजा, गैस्ट्रो, पेट में कीटाणुओं का प्रादुर्भाव इत्यादि कई बीमारियां आज भी हमें परेशान करती हैं। इन बीमारियों से शरीर की खाना हजम करने की ताकत कम होती है और कमजोरी महसूस होने लगती है। साफ-सुथरा पानी एवं साफ भोजन का इस्तेमाल तथा घर का परिसर साफ रखना, अगर इतना भी हम कर सकें तो कई बीमारियां कम होंगी।

बच्चों को होने वाले दस्त व उल्टियों से आज भी कई बच्चों की मौत हो जाती है। बच्चों को होने वाले दस्त का मुख्य कारण गंदगी तथा अस्वच्छ हाथ ही होता है। लेकिन जब पानी की तरह दस्त होते हैं तब हवा के माध्यम से फैलने वाले जहरीले कीटाणु बीमारी फैलाते हैं। इन कीटाणुओं पर दवाइयों का असर भी जल्दी नहीं होता है। इसमें बच्चों की मृत्यु शरीर का पानी सूखने से होती है। अतः चीनी-नमक का घोल इसका सबसे बेहतर इलाज है। लेकिन यह बात साबित होने के बावजूद भी कई परिवार इसे नहीं आजमाते हैं। नमक डालकर चावल की कांजी (मांड़), नारियल का पानी भी दिया जा सकता है। लेकिन अभी तक जनता ने इसे पूरी गंभीरता से स्वीकार नहीं किया है इसलिए अभी भी बच्चों की मौत हो रही है। दुर्भाग्य की बात है कि अभी भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे नहीं देखा जा रहा है। कई बार डाक्टर ऐसी दवाइयां दे देते हैं जिनसे अंतरियां कमजोर हो जाती हैं। यह गलत तरीका है। इससे मौत का खतरा बना रहता है।

यदि खूनी पेचिस या किसी अन्य प्रकार के दस्त हैं तब एण्टीबायोटिक दवाइयों का असर होता है। ये दवाइयां खाई जा सकती हैं, इनके लिए सुई लगाने की आवश्यकता नहीं है।

गलग्रंथि या घेघा रोग (थाइराइड)– इलाज कठिन, रोकथाम आसान

भारत में गलग्रंथि एक आम समस्या है। लेकिन वह आसानी से टाली जा सकती है। देश के कुछ हिस्सों (महाराष्ट्र, केरल, गोवा) को छोड़ दिया जाए तो अन्य सभी जगहों पर इसका प्रसार है। हिमालय की तलहटी में यह बीमारी अधिक देखने को मिलती है। इसमें मरीज की थाइराइड ग्रंथि धीरे-धीरे बढ़ती जाती है व उसकी गांठ बन जाती है।

रोज के भोजन में आयोडीन की कमी होने से यह बीमारी शुरू होती है। जिन महिलाओं में यह पाया जाता है उनके बच्चों के मंदबुद्धि होने की अधिक संभावना रहती है। ऐसे बच्चों का सही समय पर इलाज होने से मंदबुद्धित्व कम हो सकता है। लेकिन पैदा होते ही उसकी पहचान करने का कोई जरिया नहीं है। कुछ महीने बाद जब वह ध्यान में आने लगता है तब तक देर हो जाती है।

यह बीमारी आयोडीन के उपयोग से आसानी से टाली जा सकती है, लेकिन इतने लोगों को आयोडीन देने का सरल उपाय क्या हो सकता है? यदि आयोडीन को नमक में मिलाया जाए तो सब लोग आसानी से उसका सेवन कर सकेंगे और गलग्रंथि की बीमारी टल जाएगी। भारत में उपरोक्त राज्यों को छोड़ दिया जाए तो नमक उत्पादकों की यह जिम्मेदारी है कि वे आयोडीन मिलाकर ही नमक बेचें, लेकिन इसको सही प्रकार से अमल में नहीं लाया जाता है। यदि आयोडीन मिलाया जाता है तो भी उसे खुला रखकर कहीं लाने-ले जाने, घरों में उसे खुला रखने आदि की वजह से उसमें से आयोडीन की मात्रा कम हो जाती है। इसलिए घर में इसे बंद डिब्बे में रखना चाहिए। दुकानों में मिलने वाली नमक की थैली पर 'आयोडीनयुक्त' होने की मोहर देखकर ही उसे खरीदना चाहिए।

प्लेग और डेंगू

क्या आपको हाल के वर्षों में देश में फैले प्लेग की याद है? भारत में 1994 में फिर से अचानक प्लेग का उद्भव हुआ और चारों ओर खलबली मच गई। अतीत में जिस पर काबू पा लिया गया था वह फिर कैसे आ टपका? वह सचमुच प्लेग ही था या कोई अन्य बीमारी, इस पर आज भी चर्चा चल रही है। महाराष्ट्र और गुजरात में इस बीमारी ने हाहाकार मचा दिया था। हमारे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर भी इस घटना का बुरा असर पड़ा। कुछ वर्ष पूर्व डेंगू से दिल्ली में कई लोगों की मृत्यु हो गई थी।

क्यों आती है ये महामारियां? और भारत में ही क्यों? यह कोई संयोग की बात नहीं है। हमारे यहां इस प्रकार की महामारियां फैलने के लिए अनुकूल वातावरण बना रहता है इस बात को समझना पड़ेगा। सूरत (गुजरात) में शुरू हुआ प्लेग सांस के माध्यम से फैलने वाला फेफड़ों का प्लेग था, लेकिन उसका स्रोत कहीं गांठ के प्लेग में ही था। महाराष्ट्र के मराठवाड़ा इलाके में आया हुआ प्लेग गांठ वाला था। इस क्षेत्र में शायद भूकंप की वजह से प्लेग के कीटाणु (पिस्सू) शरीर पर लेकर जंगलों में घूमने वाले चूहे मौजूद थे। जो भी हो, चूहे इंसानों में महामारी फैला रहे हैं यह बात इंसानों के जीवनस्तर की दशा पर प्रश्नचिह्न उठाती है। चूहों से मकानों को मुक्त करना है तो मकान की संरचना में और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार करना पड़ेगा। यह अच्छा संयोग है कि प्लेग की दवाइयां हमारे देश में उपलब्ध थीं और उन्हें तुरंत इस्तेमाल किया गया; इस वजह से उस पर जल्दी काबू पाया जा सका।

सूरत शहर ने इससे अच्छा सबक सीखा और अपने शहर को गंदगी से मुक्त कर लिया। सूरत की सफाई अब सबके लिए चर्चा का विषय बन गया है।

इन घातक बीमारियों की याद इसलिए दिलाई जा रही है क्योंकि वे कभी भी फिर से वापस आ सकती हैं। वे दोबारा न आएं इसकी व्यवस्था करना हमारे हाथ में है।

वृद्धों का ध्यान रखो

जिन मां-बाप ने हमें बड़ा किया उन्हें उनके बुढ़ापे में कभी नहीं भूलना चाहिए। अपने बाल-बच्चों में खुशी से जीने का सुख उन्हें मिलना चाहिए। उनकी जरूरतें, उनकी अपेक्षाएं बहुत मामूली होती हैं, उन्हें नजरअंदाज मत कीजिए।

बूढ़ों को नरम, पतला भोजन जरूरी होता है क्योंकि वे भारी खाना नहीं पचा सकते हैं। यदि उनके सारे दांत निकाले जा चुके हैं तो कृत्रिम दांत लगाना जरूरी है। इसमें थोड़ा खर्चा जरूर होता है लेकिन उससे वृद्धों का जीवन काफी सुखकर हो जाता है। एक बार दांत गिरने शुरू होने पर जल्दी से जल्दी दांत के चिकित्सक को दिखाकर बत्तीसी के बारे में सोचना शुरू कीजिए। बत्तीसी से बोलना भी साफ रहता है। कम से कम दस वर्ष की आयु बढ़ जाती है और उसी के साथ आत्मविश्वास भी।

यदि शौचालय की सुविधा नजदीक न हो तो बूढ़ों को काफी परेशानी होती है। सर्दी के मौसम में तो यह परेशानी और अधिक बढ़ जाती है। आते-जाते कहीं गिरकर हड्डियां टूटने की संभावना बनी रहती है। हाथ अथवा कूल्हे की हड्डी टूटना सबसे अधिक संभवनीय होता है। कम दिखाई देने वाले वृद्धों को इसका कभी भी सामना करना पड़ सकता है। इसलिए उन्हें शौचालय अथवा उसी प्रकार की कोई अन्य सुविधा नजदीक होना आवश्यक है।

यदि उनका मोतियाबिंद पका हुआ है तो जल्दी ही उसका आपरेशन करके चश्मा अथवा (आजकल मिलने वाली) लेंस लगाने

से उनका जीवन अधिक सुखकर हो जाता है। उनकी दूसरों पर निर्भरता कम होती है। रोजाना की शारीरिक जरूरतें पूरी होने से काफी हद तक उन्हें आराम मिलता है। कुछ वृद्धों को मोतियाबिंद नहीं होता है लेकिन सिर्फ चश्मे की जरूरत होती है। कूल्हे की हड्डी टूटना बुढ़ापे का एक तकलीफदेह दुर्घटना है। लेकिन उसका भी अच्छा आपरेशन हो सकता है व दोबारा पहले की तरह चला जा सकता है। वृद्धों का अस्थिभंग (फ्रैक्चर) कम दर्दनाक होता है परंतु पैरों की हलचल बंद होने से फ्रैक्चर पहचाना जा सकता है। आपरेशन न करने से दिन प्रतिदिन लेटे रहना पड़ता है और निष्क्रिय पड़े रहने से जख्म हो जाते हैं, फिर उनके सड़ने से अंत में मृत्यु तक हो जाती है।

बुढ़ापे में कुछ अन्य बीमारियां भी प्रकट होती हैं। कैंसर, मधुमेह, पेशाब के रास्ते में रुकावट, रक्तचाप, हृदयरोग आदि बीमारियों की लंबी फेहरिस्त है। उनकी जरूरत के अनुसार उन्हें डाक्टर के पास ले जाना हमारा कर्तव्य है। बुढ़ापे में आदमी का चिड़चिड़ापन भी बढ़ जाता है। कुछ सहने की ताकत भी कम होती है। ऐसे में यदि उसका साथी उसे छोड़कर चला गया हो तो जिंदगी और भी असहनीय हो जाती है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर उनके परिवारजनों को उनकी देखभाल करनी चाहिए। उनके बारे में हमदर्दी से काम लेना चाहिए।

दूसरी ओर वृद्धों को भी अपनी सीमाओं को पहचानकर समझदारी से काम लेना चाहिए, तभी कई दिक्कतें टाली जा सकती हैं। लेकिन यह सलाह आपके घर के वृद्धों के लिए नहीं बल्कि आप पाठकों के लिए है, ताकि जब आपकी उम्र बढ़ेगी तब आप कैसा व्यवहार करेंगे इसकी तैयारी आप अभी से धीरे-धीरे कर पाएंगे।

छोटे गांवों में वृद्ध लोग एक जगह इकट्ठा होकर अपना

मनोरंजन करते हैं। उनकी इकट्ठा होने की जगह, उनके कार्यक्रम तय होते हैं। यह एक अच्छा रिवाज है। एक-दूसरे से मिलने-जुलने से, बातें करने से समय भी बीत जाता है, साथ ही, मन की ताजगी भी बनी रहती है। अपनी मनपसंद बातचीत करने का उन्हें अधिकार होना चाहिए। बच्चों के लिए जिस प्रकार से खेलकूद आवश्यक होता है, उसी प्रकार से बूढ़ों को भी अपने मनोरंजन के साधन चाहिए।

कई वृद्ध जिंदगी के आखिर तक व्यायाम करते हैं। चलने का व्यायाम सबसे बेहतर होता है। इसमें गिरने-पड़ने का धोखा कम रहता है। इससे इंसान को दीर्घायु प्राप्त होता है।

मनोविकार

मनोविकार के छोटे-बड़े कई प्रकार हैं। सब मिलाकर हमारे देश में दो प्रतिशत लोग मनोविकार से ग्रस्त हैं। इनमें से जो पूरे तौर पर पागल होते हैं उन्हें ही हम मनोरोगी मानकर चलते हैं। लेकिन कई लोग ऐसे हैं जिन्हें कुछ परेशानियां होती हैं मगर हमें उसका एहसास नहीं होता है। इनमें से कुछ तो दवाई खाकर ठीक भी हो जाते हैं और उनकी तकलीफें दूर हो जाती हैं।

निराशा, तनाव, रोगभ्रम आदि मनोविकार के कुछ प्रकार हैं। कुछ लोग ऐसे विकारों के आसानी से शिकार हो जाते हैं। निराशा और तनाव की मानसिकता कुछ हद तक निरोगी लोगों में भी दिखाई देती है। लेकिन जब कुछ भी काम करना मुश्किल हो जाता है तब उसे विकार कहना होगा। दवाइयां लेने से उन्हें काफी आराम मिल सकता है।

असंबद्ध बोलना, व्यवहार करना, परिस्थिति का होश न होना आदि पागलपन के लक्षण हैं। ऐसे लोग आसानी से पहचाने जाते हैं। इलाज का इन्हें कुछ हद तक ही फायदा होता है। दूसरा बड़ा



मनोविकार है लोलक की तरह दोलायमान होने वाली मानसिकता, जिसमें कभी घोर निराशा तो कभी उन्माद की अवस्था होती है। ऐसे लोग उस समय कुछ भी कर सकते हैं, जैसे—आत्महत्या, हत्या, दुर्घटना आदि।

इन दो उप प्रकारों के अलावा असंतुलित व्यक्तित्व के कुछ अन्य प्रकार भी हैं। उदाहरण के तौर पर अति गुस्सैल, अति शक्की, अति दुखी आदि। यौन संबंधित विकृत सोच व व्यवहार भी कभी-कभी मनोविकार की वजह से दिखाई देता है।

यदि अपने अड़ोस-पड़ोस में इस प्रकार के किसी व्यक्ति को हम जानते हैं तो उसके घरवालों से संपर्क रखना चाहिए। क्योंकि अक्सर इसके लिए तंत्र-मंत्र, झाड़-फूंक, गण्डा-तावीज आदि का

आसरा लिया जाता है। हमें उन्हें समझाना चाहिए कि डाक्टरी इलाज से ही ऐसे मामलों में आराम मिल सकता है।

मानसिक उपचार के लिए पागलखाने में दाखिल करना अथवा बिजली के करंट लगवाना, यही एकमात्र उपाय है, यह सोच गलत है। जो गंभीर मनोविकार से ग्रस्त हैं और जिन पर दवाइयों का असर नहीं होता, उनका ही इस प्रकार का इलाज किया जाता है। कई मनोविकार तो सिर्फ विशेष किस्म की सलाह और दवाइयों से ठीक हो जाते हैं।

हृदय रोग का आह्वान

आधुनिक समय में संक्रामक बीमारियां कम होती जा रही हैं व उनकी जगह पर कुछ नई बीमारियां आ रही हैं। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है हृदय रोग। आजकल तीस-चालीस जितनी कम उम्र में ही इसका प्रभाव दिखाई देने लग जाता है, लेकिन महिलाओं में यह कम दिखाई देता है।

इस बीमारी का मुख्य कारण है हृदय को रक्त पहुंचाने वाली धमनियों में चर्बी की परतें जम जाना, जिस वजह से रक्त का प्रवाह धीमा हो जाता है। रोजाना चर्बीयुक्त, घी-तेलयुक्त चीजें खाना, अधिक खाना, व्यायाम न करना, बैठकर काम करने की आदत होना, धूम्रपान करना आदि दुश्चक्र से हृदय रोग का अनुपात बढ़ता जा रहा है। भारतीय लोगों में मूलतः हृदय रोग की प्रवृत्ति अधिक होती है, यह बात अब पता चला है। रक्तचाप का बढ़ना यह भी इसी बीमारी का एक हिस्सा है।

आज तक यही सोचा जाता था कि हृदय रोग की बीमारी सिर्फ शहरों में रहने वाले सुखासीन लोगों को ही होती है, लेकिन अब पता चलता है कि ग्रामीण इलाकों में भी यह काफी बड़े पैमाने पर

दिखाई देता है। इसके अलावा और एक किस्म का हृदय रोग है जिसमें हृदय और जोड़ों में कीटाणुओं का आक्रमण होता है। इससे हृदय का वॉल्व कमजोर होता है। यह बीमारी ज्यादातर गांवों में और स्कूली बच्चों में दिखाई देती है।

हृदय रोग ऐसा नहीं है कि जैसे हम सर्दी-जुकाम का इलाज कर रहे हों। इसका इलाज न केवल लंबे समय तक चलता है बल्कि काफी खर्चीला भी होता है। छोटे गांवों में इसका इलाज नहीं हो सकता। रक्तचाप व गठिया (संधिवात) का गांव के डाक्टर भी इलाज कर सकते हैं।

बढ़ती उम्र के साथ हरेक को इसकी संभावना मानकर चलना चाहिए। अति मांसाहार, दारू, धूम्रपान, आलसीपन व बैठकर काम करने की आदत, व्यायाम का अभाव आदि दुश्चक्र तोड़ना पड़ेगा। हृदय की गति दोगुना बढ़ाने वाला व्यायाम कम से कम रोज 10-15 मिनट करना चाहिए। इस प्रकार का व्यायाम जितना अधिक करेंगे उतना ही हृदय रोग की आशंका दूर भागेगी, आज का खतरा कल पर टलेगा। चालीस की उम्र के बाद हर छह महीने में एक बार रक्तचाप की जांच करवाना व आवश्यकता के अनुसार उसका इलाज करना जरूरी है।

4

स्वास्थ्य का तंत्रज्ञान, अर्थशास्त्र और प्रशासन

दवाइयां : शास्त्र और व्यवहार

हमें कुछ दवाइयां (सिरदर्द, बदनदर्द के लिए) परचून की दुकानों में मिलती हैं। केमिस्ट की दुकान में हम कभी स्वयं या डाक्टर द्वारा लिखी गई दवाइयां खरीदते हैं। इन पर हमारा काफी खर्चा होता है।

दुकानों में मिलने वाली दवाइयां कई प्रकार की होती हैं लेकिन सच्चाई यह है कि आवश्यक दवाइयों की फेहरिस्त सिर्फ 300 के आसपास ही है। बात यह है कि दवाइयां अपने मूल नाम से नहीं बल्कि व्यापारिक नाम से बेची जाती हैं। कायदे के अनुसार दवाइयों को अपने मूल नाम से बेचा जाना चाहिए। एकाध अपवाद को छोड़कर बाकी के मिश्रण (दो अथवा अधिक का मिश्रण एक ही गोली-बोतल में) अलग-अलग दिए जाने चाहिए। लेकिन दवा कंपनियां तरह-तरह के सही-गलत मिश्रण तैयार करती हैं और उन्हें व्यापारिक नाम देकर अलग-अलग नाम से महंगे दाम पर बेचती हैं व भारी मुनाफा कमाती हैं। इसीलिए दवाइयों के इतने प्रकार दुकान में देखने को मिलते हैं।

मिसाल के तौर पर एस्पिरिन सिरदर्द, बदनदर्द तथा बुखार की दवा है जो दुकानों में कई अलग नामों से मिलती है व उसकी कीमत भी अलग-अलग होती है। दरअसल, आवश्यक बुनियादी दवाइयां उनके मूल नाम से ही दुकानों में उपलब्ध हों इसके बारे में

पूरी तरह से कोशिशें नहीं हुई हैं। इस तरह हमारा बहुत नुकसान होता है। दवा पर देशी भाषा में लेबल होने से आम लोगों को उसका बहुत फायदा होगा। हमारे देश में गलत दवाइयां लेना, जरूरत से ज्यादा दवाइयां लेना आदि के उदाहरण अनेक हैं ऐसा कई शोधकर्ताओं ने बताया है। उपभोक्ता आंदोलन को इस मुद्दे पर ध्यान देना चाहिए।

भारत में कुछ साल पहले 'हाथी कमेटी' ने अपने व्यापक सुझाव इस विषय पर दिए थे। कई अन्य देशों में इन सुझावों पर अमल किया गया। बांग्लादेश इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। लेकिन भारत में ये सुधार नहीं हुए। लिहाजा, जनता यानी मरीज को छोड़कर डाक्टर, औषधि कंपनियां, दुकानदार इन सभी का फायदा होता है। एंटीबायोटिक दवाएं, स्टेरायड हार्मोंस, दर्दनाशक दवाएं आदि का बड़े पैमाने पर दुरुपयोग हो रहा है। ग्रामीण तथा शहरी जनता को इसका दंड भरना पड़ता है। परिवार का स्वास्थ्य पर खर्चा बढ़ता जा रहा है। हम इसके बारे में कब तक जागरूक होंगे?

आधुनिक विज्ञान ने हमें जो दवाएं दी हैं वे हमारे लिए एक वरदान की तरह है। उनके उपयोग से कई दुःसाध्य रोगों से हम छुटकारा पा सकते हैं। लेकिन यदि हम उन्हें सही तरीकों से इस्तेमाल नहीं करेंगे तो उसके दुष्परिणाम भी भुगतने पड़ेंगे।

प्रकृति ने भारत देश को वनसंपदा से बहुत समृद्ध किया है। हजारों वनस्पतियां ऐसी हैं जिनमें औषधीय गुण हैं। आयुर्वेद ने इसे पहले से पहचाना है। अब नए विज्ञान में इसका यथायोग्य परीक्षण करने के कारण यह अमूल्य ज्ञान भारत पूरी दुनिया को दे सकता है। हम अपने घरों में भी इनका उपयोग कर सकते हैं।

स्वास्थ्य पर खर्चा

आजादी के कुछ साल बाद तक निजी डाक्टरी का व्यवसाय कम था

और लोग सरकारी सेवाओं पर ज्यादा निर्भर थे। लेकिन सरकारी सेवाएं भी सीमित ही थीं। यदि 'भोर कमेटी' के सुझावों के अनुसार सरकार स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाले खर्च को बजट के 5% तक नियोजित करती तो सरकारी सेवाओं का अच्छा विस्तार होता। पिछले कई दशकों से स्वास्थ्य सेवाओं पर राष्ट्रीय उत्पादन का केवल डेढ़ प्रतिशत खर्च हो रहा है। अन्य देशों में यह आंकड़ा 5 से 15% तक है।

सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं पर भारत में कम रकम लगाई जाती है, यह बात जहां सच है वहीं इस मद में लोगों का निजी खर्च भी कम नहीं हुआ है। उपचार मद में लोग अपनी जेब से काफी पैसा लगा रहे हैं। स्वास्थ्य पर होने वाले कुल खर्चे का सिर्फ 25% बोझ सरकार उठाती है और बचा हुआ 75% लोग खुद उठाते हैं। हमारे यहां कमाई के अनुपात में निजी उपचार काफी महंगा है। उसमें भी सुई, सलाइन, टानिक आदि पर फिजूलखर्ची भी काफी होता है।

पिछले कुछ सालों में हास्पिटल सेवाओं का भारत में काफी विकास हुआ है और अत्यंत आधुनिक उपचार भी यहां मिल सकते हैं। लेकिन वहां का खर्चा इतना अधिक होता है कि साधारण नागरिक उस हास्पिटल में कदम भी नहीं रख सकता है। मध्यवर्ग के लोग भी स्वास्थ्य बीमा के बगैर उसका लाभ नहीं उठा सकते हैं। इसी वजह से आजकल स्वास्थ्य बीमा करने में लोगों की रुचि बढ़ी है और यह अच्छी बात है। केंद्र सरकार ने हाल ही में स्वास्थ्य बीमा योजना को प्रोत्साहन देने के लिए कुछ रियायतें घोषित की है।

दरअसल ग्राम-स्तर पर न्यूनतम खर्चे में प्राथमिक उपचार (स्वास्थ्य सेवा) कराना संभव है। दसवीं तक पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों को प्राथमिक स्वास्थ्य उपचार की शिक्षा देने से आज के खर्चे के एक-चौथाई खर्चे में अच्छी सेवा गांव में ही उपलब्ध की जा सकती है। पर हम कब करेंगे यह ?

सुई और सलाइन

कम से कम ग्रामीण क्षेत्र में यह समीकरण बन चुका है कि डाक्टर, यानी इंजेक्शन (सुई) और सलाइन। सिर्फ मरीज की ओर से ही यह मांग आती है ऐसा नहीं है। डाक्टर के मन में भी यही होता है। मरीज को लगता है कि इससे आराम मिलेगा और डाक्टर के लिए यह फटाफट पैसा कमाने का माध्यम होता है। सलाइन इतना लोकप्रिय हो चुका है कि लोगों को लगता है कि यह रामबाण दवा है।

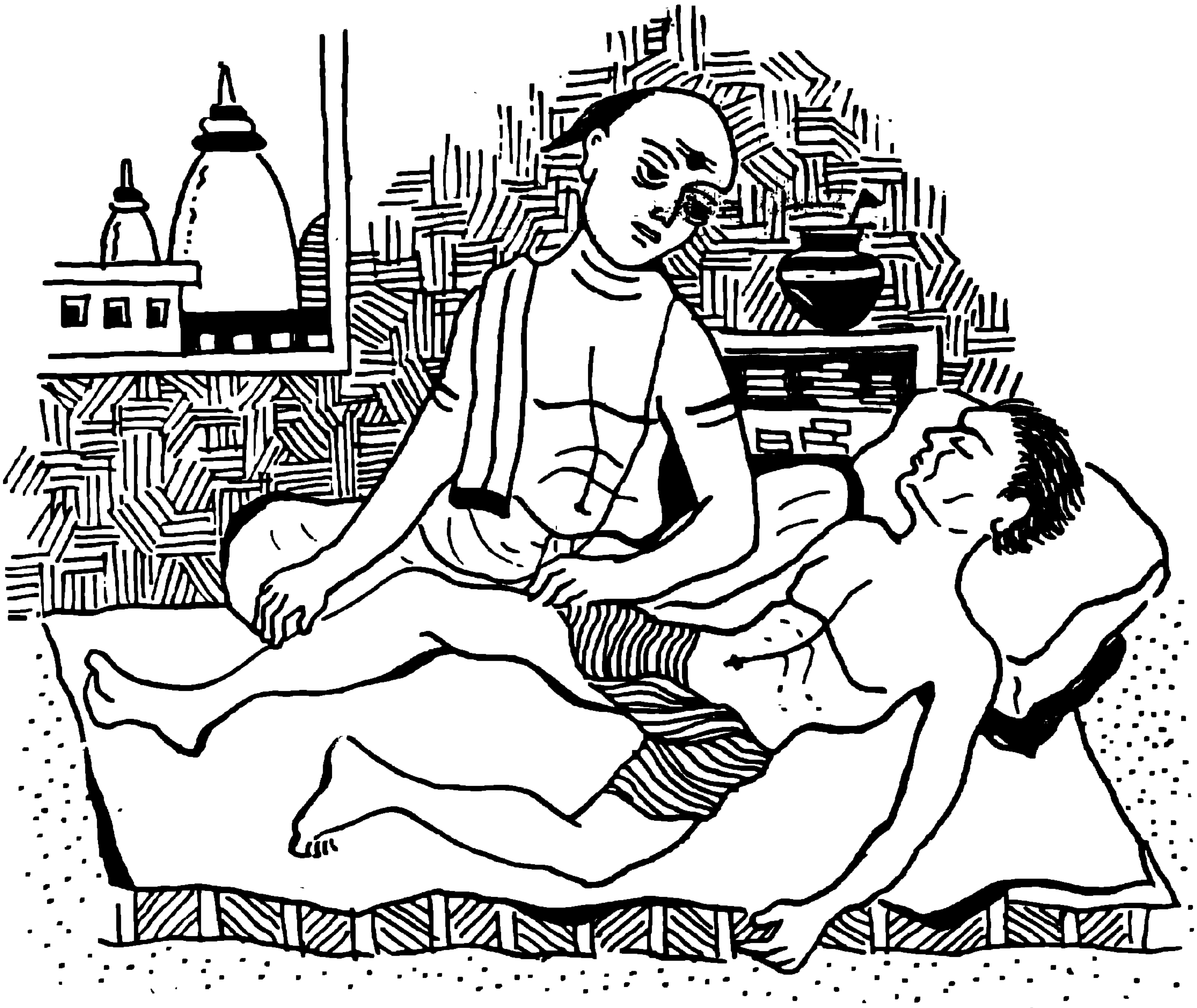
ज्यादातर मामलों में सुई और सलाइन की कोई आवश्यकता नहीं होती है। सलाइन केवल नमक, चीनी का घोल होता है जिसे सीधे पीने से भी काम चल सकता है। मरीज जब मुंह से कुछ भी खाने-पीने की अवस्था में नहीं होता है तभी उसे सलाइन देना चाहिए, अन्यथा यह सिर्फ धोखाधड़ी है।

दरअसल आजकल सभी दवाएं खाने योग्य मिलती हैं। कुछ जल्दी घुलने वाली होती हैं जिनका असर जल्दी होता है। इन्हें इंजेक्शन के बदले में इस्तेमाल किया जा सकता है।

इंजेक्शन के कुछ दुष्परिणाम भी हैं। इससे कभी नस को जख्म हो सकती है तो कभी फोड़ा बन सकता है। पीलिया, एड्स आदि का खतरा भी बना रहता है। ये बीमारियां किसी को भी हो सकती है। डाक्टर और मरीज दोनों इस बात पर ध्यान दें कि जब बहुत आवश्यक हो तभी इंजेक्शन दिया जाए। छोटे बच्चों को इंजेक्शन देना टालना ही चाहिए।

आयुर्वेद, सिद्ध, यूनानी, होमियोपैथी

रोग चिकित्सा की एलोपैथी एकमात्र पद्धति नहीं है। कई अन्य पद्धतियां भी हैं। भारत में आयुर्वेद, यूनानी पद्धति सदियों से मालूम है। सिद्ध चिकित्सा पद्धति दक्षिणी भारत में लोकप्रिय है जो आयुर्वेद



का ही एक हिस्सा है। होमियोपैथी का मूल जर्मनी में है लेकिन भारत में यह काफी लोकप्रिय है।

आयुर्वेद और होमियोपैथी की स्वतंत्र नियामक समितियां भारत सरकार ने स्थापित की है। इन पद्धतियों से उपचार करने के लिए कुछ सरकारी निधि का भी प्रावधान किया गया है। लेकिन एलोपैथी के लिए मिलने वाली मदद के अनुपात में यह रकम नहीं के बराबर है। इन समितियों से मान्यता प्राप्त महाविद्यालयों से शिक्षा लेकर स्नातक की परीक्षा पास होने पर उस पद्धति का व्यवसाय करने की इजाजत मिलती है।

आयुर्वेद पद्धति का सीधा संबंध भारतीय प्रकृति, लोक व्यवहार से जुड़ा है। त्रिदोष(कफ, वात, पित्त), शीतोष्ण आदि आयुर्वेद की संकल्पनाएं जनमानस का हिस्सा बन चुकी हैं। पथ्यापथ्य विचार आयुर्वेद में काफी महत्त्व रखता है। औषधीय वनस्पतियों के मिश्रण

से आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार कई दवाएं बनाई जाती हैं। आयुर्वेदिक दवाएं खास आयुर्वेद की दुकानों में मिलती हैं, साथ ही अंग्रेजी दवाओं के दुकानों में भी मिलती हैं। पहले आयुर्वेद-शास्त्र में प्रवीण वैद्य अंग्रेजी पद्धति भी जानते थे, लेकिन अब शुद्ध आयुर्वेद ही पढ़ाया जाता है। कई वैद्य बनी-बनाई दवाइयों पर निर्भर रहने के बजाय खुद ही दवाइयां बना लेते हैं।

भारत में सुशिक्षित तबका कुछ बीमारियों के लिए आयुर्वेद पर ही भरोसा रखता है। उत्तर और दक्षिण भारत में छोटे गांवों में आज भी वैद्य काफी लोकप्रिय होते हैं। शहरों में भी उनका व्यवसाय काफी अच्छा चलता है। लेकिन पिछले कुछ सालों से वैद्य भी अंग्रेजी दवाओं का इस्तेमाल करने लगे हैं।

होमियोपैथी की चिकित्सा पद्धति एकदम भिन्न है। उसकी बुनियादी स्थापनाएं भी अलग हैं। साबुदाने की तरह दिखने वाली गोलियों में कई प्रकार की दवाइयां मिलाकर होमियोपैथिक दवाइयां बनाई जाती हैं। ये दवाइयां काफी सस्ती होती हैं। कई मरीजों को इससे आराम मिलता है, लेकिन कइयों को कुछ भी फायदा नहीं होता, या फिर तकलीफ बढ़ती ही है। होमियोपैथी में इंजेक्शन, आपरेशन, सलाइन वगैरह कुछ भी नहीं होता। सिर्फ मलहम, गोलियां और पीने की दवाइयां होती हैं। मरीज की पूरी जानकारी लेकर सही दवा ढूंढ़ निकालना यही इसमें कुशलता है। कई होमियोपैथिक डाक्टर अब इसके लिए कंप्यूटर का उपयोग कर रहे हैं।

स्वास्थ्य-प्रशासन

हमारे देश में कई प्रदेश हैं। हरेक जगह की स्वास्थ्य की कुछ विशेष समस्याएं भी हैं। स्थानीय परिस्थिति भी भिन्न-भिन्न है। स्वाभाविक है कि स्वास्थ्य का विषय संविधान में सामाजिक विषय माना गया है,

यानी स्वास्थ्य की जिम्मेदारी राज्य व केंद्र, दोनों सरकारों की है। केंद्र सरकार की जिम्मेदारी है देश भर के लिए स्वास्थ्य विषयक कानून बनाना, राष्ट्रीय योजना तैयार करना और उसे अमल में लाना; स्वास्थ्य विषयक शोध कार्य, औषधि उत्पादन, औषधि नियंत्रण, अन्न और स्वास्थ्य-शिक्षा का नियमन, अंतर्राष्ट्रीय यात्रियों की स्वास्थ्य संबंधी जांच इत्यादि। इसके अलावा, केंद्रीय कर्मचारियों के लिए स्वास्थ्य सेवा प्रदान करना तथा कुछ आयुर्विज्ञान शिक्षा संस्थान चलाना।

राज्य सरकारें इन कार्यों को अपने-अपने राज्यों में कार्यान्वित करती हैं। उदाहरण के लिए, आयुर्विज्ञान शिक्षा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजनाएं, अन्न-औषधि नियंत्रण आदि। ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, ग्रामीण अस्पताल, उपकेंद्र, आंगनवाड़ी, शहरी इलाकों में सरकारी हास्पिटल आदि चलाने की जिम्मेदारी राज्य सरकार की होती है।

जिन जगहों पर पंचायत व्यवस्था है वहां पर ग्रामीण इलाकों की सरकारी स्वास्थ्य सेवाएं जिला परिषद द्वारा चलाई जाती हैं। सरकार की सभी योजनाएं और उसके लिए आर्थिक चंदा जिला परिषद के पास आता है। नगरपालिकाएं शहरों में साफ-सफाई, स्वास्थ्य सेवाएं (दवाखाना व हास्पिटल) तथा राष्ट्रीय योजनाएं कार्यान्वित करती हैं। इसका मतलब यह है कि सबका नियंत्रण अंततः वहां की स्थानीय स्वायत्त संस्थाएं करती हैं। ग्राम पंचायतों के पास साफ-सफाई का काम होता है। वे दवाखाने भी चलाती हैं।

निजी दवाखानों एवं अस्पतालों का दर्जा नियंत्रित करने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों और नगरपालिकाओं की संयुक्त रूप से होती है, लेकिन अभी तक यह काम उपेक्षित ही रहा है।

दवा की दुकानों का नियंत्रण अन्न एवं औषधि विभाग करता

है। सरकार की योजनाएं लागू करने की जिम्मेदारी किस विभाग की है इसे जानने के लिए स्वास्थ्य सेवाओं के नियंत्रण का ढांचा समझना बहुत जरूरी है। इसके बाद भी हम उसमें क्या सुधार चाहते हैं इसके बारे में सोचा जा सकता है।

नए आयुर्वैज्ञानिक तंत्रज्ञान

सुश्रुत के जमाने में औषधियों की जानकारी, शल्यक्रिया (आपरेशन) आदि आयुर्वैज्ञानिक तंत्रज्ञान हमारे देश में थे।

अब नया तंत्रज्ञान बीसवीं सदी में वैद्यकीय जगत में आविष्कृत हो रहा है। इसमें से प्रमुख है, शरीर के अंदर की संरचना प्रत्यक्ष देखना। इसकी शुरुआत एक्स-किरणों से हुई थी। लेकिन अब कंप्यूटर और कुछ अन्य तंत्रज्ञान को मिलाकर 'अल्ट्रासाउंड' (ध्वनि चित्र), मैग्नेटिक चित्र, स्कैन आदि की वजह से आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में एक क्रांति-सी हुई है। पहले जो चीजें आपरेशन के बिना नहीं समझ में आती थीं वे अब खून का एक बूंद भी बिना निकाले सरलता से दिखाई देती हैं। शरीर के अंदर प्रकाश-नलिका डालकर देखने की सुविधा भी अब प्राप्त है। जठर, मूत्राशय, आंत, पेट आदि को अब प्रत्यक्ष देखा जा सकता है या उनके फोटो खींचे जा सकते हैं। कभी-कभी इन नलिकाओं में देखकर छोटे-छोटे आपरेशन भी किए जाते हैं। दूरबीन से नसबंदी इसका एक उदाहरण है।

हृदय की शल्यक्रिया का तंत्रज्ञान भी अब बदलता जा रहा है। मस्तिष्क की शल्यक्रिया भी लेजर और गामा किरणों की मदद से करने का नया तकनीक आने से रक्तहीन आपरेशन का एक नया क्षेत्र खुल गया है।

अंग-प्रतिरोपन का आपरेशन पहले सिर्फ गुर्दा अथवा जोड़ों को बदलने के लिए होता था, लेकिन अब वैज्ञानिक हृदय, यकृत आदि

को अंग-प्रतिरोपन करने के लिए भी प्रयोग कर रहे हैं।

बांझपन के लिए 'टेस्ट ट्यूब बेबी' की खोज से हम परिचित हैं। अब कोशिका से बच्चा तैयार करना और उसे स्त्री के गर्भाशय में डालकर बढ़ाना भी संभव हो चुका है। इसको 'क्लोनिंग' कहते हैं। गर्भ का गर्भाशय के अंदर ही आपरेशन करने का तकनीक भी अब विकसित हुआ है।

आयुर्विज्ञान के क्षितिज पर नित्य नए खोज सामने आ रहे हैं, लेकिन भारतीयों के लिए वे सब अभी तक बहुत दूर हैं।

5
स्वास्थ्य सेवा का परिचय

दाई

छोटे गांवों में अभी भी प्रसूति घर में ही की जाती है। ऐन समय पर वाहन मिलने का अभाव, दवाखानों का दूर होना, पैसों की कमी आदि कई कारणों से प्रसूति घर में ही दाई की मदद से की जाती है। ज्यादातर प्रसूतियां बारिश के मौसम में और वह भी रात के समय में ही होती हैं।

दाइयां पारंपरिक पद्धति से प्रसूति करवाती हैं, जो कुछ मायने में तो अच्छी हैं लेकिन कुछ खतरनाक भी हैं। समय के पहले से वेदना शुरू करवाना गलत तरीकों में से एक है।

इन दाइयों को नए तंत्रज्ञान सिखाने के लिए सरकारी प्रसूति गृहों में प्रशिक्षण दिया जाता है। कुछ आवश्यक साधन जैसे कि निष्कीटित (स्टरलाइज्ड) धागा, ब्लेड आदि उन्हें दिया जाता है। यदि इन साधनों का वे सही उपयोग करती हैं तो प्रसूति आसान हो जाती है।

घर में ही प्रसूति करवाने का फैसला लेने से पहले नर्स से यह जांच कर लेना आवश्यक है कि गर्भावस्था में अथवा प्रसूति के समय कुछ खतरा तो नहीं है। केवल आसान प्रसूतियां ही घर में होनी चाहिए। कभी-कभी पूरी सावधानी बरतने के बाद भी प्रसूति के समय अथवा बाद में तकलीफ हो सकती है। कुछ खतरे (जैसे रक्तस्राव)

पहले से कहे नहीं जा सकते। ऐसे समय तुरंत सरकारी अथवा निजी डाक्टर के पास जाना आवश्यक है।

दाई को सरकारी मानधन देने की बात ज्यादातर सरकारी कागजों तक ही सीमित है। लिहाजा, उसके काम का मेहनताना उसे उस परिवार से मिलना चाहिए। ज्यादातर दाइयां गरीब, जरूरतमंद और बूढ़ी होती हैं।

आधुनिक समय में दाई परंपरा शायद ही टिक पाएगी। प्रसूतितंत्र विकसित हो रहा है एवं प्रसूति सुरक्षित हो इसलिए ज्यादातर लोग अस्पतालों में जाना पसंद करते हैं। लेकिन छोटे गांवों की गर्भवती महिलाओं को दाई के बिना कोई उपाय नहीं है।

आंगनवाड़ी

बच्चे स्वस्थ और निरोगी हों इसके लिए वे जब से गर्भ में हैं तभी से कोशिश की जानी चाहिए। नियमित टीकाकरण एवं पर्याप्त खुराक इन दो चीजों का होना अत्यंत आवश्यक है। आंगनवाड़ी की योजना इसी विचार से शुरू हुई है। 1980 से देश के पिछड़े इलाकों तथा शहरी गरीब बस्तियों में यह योजना शुरू हुई। छह साल के अंदर के बच्चों के लिए यह कार्यक्रम है। उनमें से जो बड़े बच्चे (3 साल से ऊपर के) होंगे उनके लिए बालवाड़ी चलाना इसका मुख्य उद्देश्य है।

बालवाड़ी एक सहायक व एक शिक्षिका की सेवा पर निर्भर होती है। सुबह तीन घंटे बालवाड़ी चलाने के बाद दोपहर में तीन साल के अंदर के बच्चों की भी देखभाल की जाती है। बच्चों का वजन करना, कम वजन के बच्चों को कुपोषण के खतरे से बचाने के लिए उन्हें पोषक आहार देना और उनके मां-बाप को सलाह देना यह आंगनवाड़ी का मुख्य उद्देश्य है। बालवाड़ी में केवल कुपोषित ही नहीं बल्कि उनसे छोटे अन्य बालकों को भी आहार लेने के लिए बुलाया

जाता है। गर्भवती महिला को भी पोषक आहार दिया जाता है।

टीकाकरण व पूर्वप्राथमिक शिक्षा का काम भी बालवाड़ी में होता है। सुबह के समय में बालकों को सम्हालने की सुविधा होने के कारण आंगनवाड़ी कार्यक्रम से माताओं को काफी सहूलियत मिली है। ज्यादातर गांवों में ग्राम पंचायतों ने आंगनवाड़ी चलाने के लिए समाजमंदिर की सुविधा दी है।

इतने बड़े पैमाने पर पोषक आहार की व्यवस्था करना, फिर गांव-गांव में उसे पहुंचाना एक बड़ा काम है। पहले 'सुखदा' नाम से बना-बनाया आहार दिया जाता था जिसमें गेहूं, मूंगफली, चने की दाल को पीसकर उसमें गुड़ मिलाते थे। अब कुछ राज्यों में खाना पकाकर दिया जाता है। लेकिन यह काम भी आसान नहीं है। ईंधन की समस्या हमेशा रहती ही है। फिर भी आंगनवाड़ी चलाने वाली



शिक्षिका और उसकी सहायक उन दिक्कतों का सामना करते हुए काम करती रहती हैं। इन महिलाओं ने यह काम बड़े धैर्य से चलाया है इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन गांव वाले उनकी मदद करते हैं या नहीं यह देखना हम जिम्मेदार लोगों का कर्तव्य है।

प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र

हम 'प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र' का बोर्ड लगे हुए सरकारी दवाखाने देखते हैं। लेकिन वे सिर्फ दवाखाने नहीं होते हैं। स्वास्थ्य संबंधित सभी राष्ट्रीय योजनाओं को गांव-गांव में लागू करने की जिम्मेदारी इन केंद्रों पर होती है। एक केंद्र में एक अथवा दो डाक्टर, नर्स, कंपाउंडर, कुष्ठरोग विशेषज्ञ, चार-पांच सुपरवाइजर आदि होते हैं। तकरीबन सभी केंद्रों को एक जीप राष्ट्रीय योजनाओं को सफल बनाने के लिए दी गई है। उसकी उपलब्धता के अनुसार हम भी किराया देकर, उसकी रसीद लेकर उस एंबुलेंस का इस्तेमाल कर सकते हैं।

हर प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र को 30,000 की आबादी की देखभाल करनी पड़ती है। आदिवासी और दूरदराज के इलाकों के लिए 20,000 की आबादी पर एक केंद्र होता है। हर केंद्र के चार या पांच उपकेंद्र होते हैं। सभी राष्ट्रीय योजनाएं इन्हीं केंद्रों-उपकेंद्रों से लागू की जाती हैं।

स्वास्थ्य केंद्र में 'केस पेपर' बनाने के पैसे छोड़कर किसी भी इलाज के लिए पैसे नहीं देने पड़ते हैं। सभी जगहों पर इस तरह की सूचना के बोर्ड लगे हैं। केंद्र के डाक्टरों को निजी व्यवसाय करने की यदि इजाजत है तो उन्हें केंद्र से कुछ दूरी पर अपना व्यवसाय करने का सख्त नियम है। यदि उन्हें सरकारी मकान दिया गया है तो वहां भी डाक्टर अपना निजी व्यवसाय नहीं कर सकते। यदि गांव के सभी नागरिक चाहते हैं तो मुफ्त इलाज का उन्हें अबाधित अधिकार है।

सरकारी कर्मचारियों को बगैर रसीद कोई भी पैसा लेने का हक नहीं है।

केंद्र में आने वाले मरीजों का मुफ्त इलाज करने के अलावा प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में कई अन्य प्रकार के काम होते हैं। प्रसूति, गर्भपात सेवा (यदि मान्यता प्राप्त है), स्वास्थ्य शिक्षा, महामारी का नियंत्रण, टीकाकरण, परिवार-नियोजन, टी.बी., कुष्ठरोग, मलेरिया, फाइलेरिया, दस्त आदि बीमारियों के लिए विशेष कार्यक्रम, अंधत्व निवारण आदि कई प्रकार के काम यहां होते हैं। मारपीट, दुर्घटना आदि के समय आवश्यक डाक्टरी सर्टिफिकेट भी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र से मिलता है। यदि उसके लिए पैसे जमा किए हों तो उसकी रसीद ले सकते हैं।

प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र देहात की रीढ़ की हड्डी है। वह मजबूत होना आवश्यक है। पंचायती राज के अंदर काम करने वाली इस व्यवस्था की निगरानी करना जनता का भी काम है। मरीज की यदि ठीक से देखभाल नहीं की गई तो धीरे-धीरे जनता केंद्र में आना ही छोड़ देगी इस बात का ध्यान अधिकारियों को रखना चाहिए। इसी प्रकार से जो डाक्टर मन से मरीज की सेवा कर रहा है उसे परेशान न किया जाए तथा उसे अपने काम से आनंद मिले इसकी जिम्मेदारी लोगों के कंधे पर होती है।

ग्रामीण अस्पताल

हरेक तहसील में किसी महत्त्व के स्थान पर ग्रामीण अस्पताल होता है। यह अस्पताल प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के ऊपर होता है। उसका मुख्य काम है रोगियों की सेवा। इसके लिए वहां स्नातकोत्तर शिक्षाप्राप्त एम. डी. अथवा एम.एस. डाक्टर, तीन-चार सहायक डाक्टर, नर्स वगैरह होते हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में जो इलाज मुश्किल होता है वह यहां किया जाए इस अपेक्षा से इन्हें बनाया गया है। कठिन प्रसूति में

आवश्यक इलाज, आपरेशन, विशेषज्ञों की सलाह, अच्छी अंतरंग चिकित्सा सेवा, विविध तरह के छोटे-बड़े आपरेशन, एक्स-रे, खून-पेशाब की जांच आदि सेवाएं इन अस्पतालों में प्राप्त होनी चाहिए। हर तहसील के उपकेंद्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, व कुल मिलाकर एक लाख की आबादी को इसका स्थायी और मजबूत आधार मिलना चाहिए। इस सोच के साथ ग्रामीण अस्पताल बनाए गए हैं। कुछ राज्यों ने इस शृंखला को मजबूत करने के लिए विश्व-बैंक से कर्ज भी लिया है।

ग्रामीण अस्पतालों से सभी उपचार, आपरेशन आदि मुफ्त होने की अपेक्षा रखी गई है। लेकिन मरीज की आर्थिक परिस्थिति के अनुसार वह कुछ सेवाओं के लिए फीस अदा करें इसके लिए प्रशासन प्रयत्नशील है। इस प्रकार दी गयी फीस की रसीद मिलती है। यदि इस अपवाद को छोड़ दें तो बाकी सारा इलाज मुफ्त होता है। कुछ जगहों पर लोगों से जबरदस्ती पैसे वसूलने की घटनाएं भी होती हैं। जनता को संगठित होकर इसे रोकना चाहिए।

यदि सरकारी अस्पतालों में भी निजी अस्पतालों की तरह पैसे देने पड़े तो 'सबके लिए स्वास्थ्य' की घोषणा बेमानी होगी। इन अस्पतालों एवं स्वास्थ्य सेवाओं को चलाने के लिए सरकार प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से करों के माध्यम से पैसा इकट्ठा करती है इसलिए स्वास्थ्य-सेवा का मुफ्त लाभ लेना जनता का अधिकार है।

ग्रामीण अस्पताल में यदि किसी प्रकार की दवा उपलब्ध नहीं है तो मरीज को उसे बाहर से खरीदने के लिए राजी होना चाहिए। यह नामुमकिन होगा कि सभी दवाइयां वहां हर समय उपलब्ध हों। अर्थात् यह भी आवश्यक है कि अस्पतालों को दवाइयां उचित मात्रा में मिले और वे उसे फिजूल बर्बाद न करें।

जिन मरीजों का अस्पतालों में इलाज नहीं हो सकता तथा जो गंभीर हालत में हैं उन्हें जिला अस्पताल में ले जाना पड़ता है। इसके

लिए एंबुलेंस होती है। ग्रामीण अस्पतालों का कामकाज ठीक से चले इसके लिए एक स्थानीय लोक-समिति भी होती है। उसके सदस्यों के नाम वहां बोर्ड पर लिखे होते हैं। इन समितियों को केवल शोभा के लिए नहीं बल्कि सचमुच काम करना चाहिए।

नर्स और स्वास्थ्य-सेवक

प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र के नीचे हर पांच हजार की आबादी के ऊपर एक उपकेंद्र होता है। इसमें एक नर्स व एक पुरुष स्वास्थ्य-सेवक होता है। इन दोनों के कामों में थोड़ा-बहुत अंतर है और इनमें आबादी का बंटवारा भी किया हुआ होता है। नर्स का क्या काम होता है पहले यह देखते हैं।

उपकेंद्र के नजदीक के गांव नर्स की देखरेख में होते हैं। कुल 2,000 की आबादी को उन्हें देखना पड़ता है (बाकी आबादी को पुरुष सेवक देखते हैं)। इस 2,000 की आबादी में घर-घर जाकर भेंट, गुटों को बनाकर काम करना आदि तरीकों से नर्स काम करती हैं। टीका लगाना, गर्भवती स्त्रियों की जांच करना व उसे सलाह देना, दवा देना, महामारियों को नियंत्रण में रखना (मलेरिया, दस्त आदि), टी.बी. के लिए सक्षम उपचार, स्कूली बच्चों की जांच और स्वास्थ्य शिक्षा नर्सों के ये मुख्य काम होते हैं। इसके अलावा प्रसूति में भी मदद करनी पड़ती है।

लेकिन कई कारणों से नर्स हर प्रसूति के समय हाजिर नहीं रह सकती। काम की जगह पर रात बिताना हरेक के लिए संभव नहीं है। ज्यादातर प्रसूतियां रात को और बारिश के मौसम में होती हैं जिसकी वजह से लोग अभी भी दाई व पड़ोसन पर निर्भर रहते हैं। इसमें नर्स का क्या दोष है?

नर्स के पास रोजाना की मामूली बीमारियों की दवाएं होती हैं। बुखार, खांसी, दस्त, सिरदर्द आदि छोटी-मोटी परेशानियों का वे

इलाज कर सकती हैं, जिसके लिए पैसे देने की जरूरत नहीं है। लेकिन कई उपकेंद्रों में अभी तक यह सुविधा उपलब्ध नहीं है।

परिवार-नियोजन के लिए सलाह देना, निरोध-गर्भनिरोधक गोलियां बांटना इत्यादि महत्त्वपूर्ण काम नर्स का होता है। पुरुष या स्त्री को जब परिवार-नियोजन का आपरेशन कराना होता है तब नर्स उन्हें सही सलाह देती है।

भारत के लाखों-लाख गांवों में स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका नर्स अदा कर सकती है। उनकी सही दिक्कतें दूर करते हुए हमें इन सेवाओं का लाभ उठाना चाहिए।

बहुउद्देशीय स्वास्थ्य-सेवक

हर महीना-पंद्रह दिन में घर-घर जाकर बुखार को नोट करने वाले कर्मचारी आप सबको पता है। वे दरवाजे पर चाक से और कार्ड पर पेंसिल से चिह्न लगाकर जाते हैं। इन कर्मचारियों को पहले और आज भी चेचक-डाक्टर, मलेरिया-डाक्टर, दस्त-डाक्टर कहने का रिवाज है। ये अलग-अलग काम अब एक ही हो गए हैं, इसलिए अब उन्हें 'बहुउद्देशीय कर्मचारी' कहा जाता है। हम उन्हें 'स्वास्थ्य-सेवक' के नाम से पुकारते हैं।

नर्स की तरह इनका काम भी महत्त्वपूर्ण है। प्रसूति और गर्भवती महिलाओं की जांच को छोड़कर बाकी सारा काम नर्स की ही तरह उन्हें करना पड़ता है। नर्स को 2,000 की तो इन्हें 3,000 की आबादी में काम करना होता है सिर्फ इतना ही फर्क है। सभी राष्ट्रीय योजनाओं को गांव में उन्हें लागू करना होता है। मामूली बीमारियों के मुफ्त इलाज के लिए उनके पास दवाएं होती हैं। लेकिन कई जगहों पर इंजेक्शन देकर वे प्राइवेट डाक्टर की तरह निजी व्यवसाय भी करते हैं। यदि ग्रामवासी इसमें दखल देकर इस प्रवृत्ति को नहीं रोकेंगे

तो इन कर्मचारियों का ध्यान सिर्फ पैसे बनाने पर ही रहेगा व अन्य महत्त्वपूर्ण काम रह जाएंगे।

नर्स ही की तरह ये कर्मचारी भी प्रशिक्षित होते हैं। 'बहुउद्देशीय स्वास्थ्य-सेवक' का एक साल का पाठ्यक्रम वे पूरा करते हैं। उनके ज्ञान का अच्छा उपयोग किया जा सकता है।

फिर भी, कई कारणों से उपकेंद्र की सेवाएं संतोषजनक नहीं हैं। लोग जहां इन सेवाओं का पूरा लाभ नहीं उठाते हैं वहीं उपकेंद्र लोगों की अपेक्षाएं पूरी नहीं कर पाता है। दरअसल, हर सप्ताह-दो सप्ताह में प्राथमिक स्वास्थ्य-केंद्र के डाक्टर को उपकेंद्र में जाना चाहिए। लेकिन ऐसा अक्सर नहीं होता है। टीकाकरण को छोड़ दिया जाय तो अन्य स्वास्थ्य-योजनाओं को आधा-अधूरा छोड़ दिया जाता है। स्वास्थ्य सेवाओं के ढांचे में उपकेंद्र का काम ही सबसे अहम काम है। कई राज्यों में यह काम पंचायती राज को सौंपा गया है, फिर भी हम बहुत कुछ हासिल नहीं कर पाए हैं।

निजी दवाखाने (प्राइवेट डिस्पेंसरी)

छोटे-बड़े गांवों में लोग इलाज और दवा के लिए सरकारी दवाखानों से ज्यादा निजी दवाखानों पर निर्भर रहते हैं। बीस प्रतिशत लोग सरकारी दवाखानों में जबकि अन्य सभी निजी डाक्टरों से इलाज करवाते हैं और उस पर काफी पैसा खर्च करते हैं। लेकिन हमारे देश में छोटे गांवों में इलाज करने वाले डाक्टर प्रशिक्षित ही होंगे इसका कोई भरोसा नहीं है। इनमें से आधे से ज्यादा डाक्टर किसी डाक्टर के साथ सहायक का काम करते हुए कुछ सीख लेते हैं।

कई डाक्टर होमियोपैथी, आयुर्वेद अथवा इलेक्ट्रोपैथी सीखे होते हैं, लेकिन दवाएं एलोपैथी की देते हैं। यह एक अजीबोगरीब

स्थिति है। लेकिन कुछेक डाक्टर अच्छे प्रशिक्षित भी होते हैं इसे भी ध्यान में रखना जरूरी है। हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार योग्य प्रशिक्षण के बिना दवाएं देने पर कुछ राज्य सरकारों ने प्रतिबंध लगाया है। खुद को डाक्टर कहलाने वाले हरेक व्यक्ति को अपने दवाखाने में उसका सर्टिफिकेट लगाना आवश्यक है।

ये निजी डाक्टर उन जगहों पर काम करते हैं जहां डाक्टर का होना अत्यंत आवश्यक है। कुछ हद तक वे भली-बुरी सेवाएं प्रदान करते हैं, इस बात को ध्यान में रखते हुए सरकार को चाहिए कि उनके लिए लघु पाठ्यक्रम बनाकर उन्हें प्रशिक्षित किया जाए और उन्हें दवाएं देने की इजाजत दी जाए। अगर ऐसा नहीं किया गया तो ग्रामीण भारत में निजी स्वास्थ्य-सेवाओं का स्तर बहुत ही घटिया रहेगा।

रोग का सही निदान करना, उसका सही उपचार करना और अच्छी स्वास्थ्य-शिक्षा प्रदान करना यह चिकित्सा व्यवसाय की जिम्मेदारी है। बेवजह इंजेक्शन देना, सलाइन लगाना, दवाओं का गैर-वैज्ञानिक तरीके से इस्तेमाल करना, सही समय पर रोग का निदान न करना आदि अनेक समस्याएं निजी दवाखानों ने पैदा की हैं। इसकी वजह से परिवारों का दवाओं और इलाज पर खर्चा बढ़ रहा है। इसके अनुपात में इसके परिणाम कम हैं। इस परिस्थिति को हमें बदलने का प्रयास करना चाहिए।

ये सेवाएं वैज्ञानिक रूप से भरोसेमंद, सस्ती और सही मायने में जनहितकारी कैसे हो सकती हैं इस पर सरकार, ग्राहक संगठन और डाक्टरों के संगठनों को कमर कसनी चाहिए। लेकिन जो डाक्टर, वैद्य, होमियोपैथ वैज्ञानिक तरीके से उपचार करते हैं उनके प्रति हमें एहसानमंद रहना चाहिए। निजी चिकित्सा व्यवसाय एक सेवा है दुकानदारी नहीं, इस बात का एहसास जिस दिन होगा वह दिन

सुदिन कहलाएगा। रोगियों का हित यही इसका सर्वश्रेष्ठ मूल्य है, बाकी सब दोयम है।

स्थानीय स्वास्थ्य परंपराएं

आधुनिक विज्ञान, डाक्टर आदि सुविधाएं उपलब्ध होने से पहले हजारों सालों से भारत भर में परंपरागत उपचार पद्धतियां चलती आ रही हैं। गांवों में वैद्य, कविराज की थोड़ी-बहुत परंपरा है। इसी से आगे चलकर आयुर्वेद विज्ञान की प्रगति हुई। एक समय में आपरेशन तक करने का विज्ञान विकसित था, जिसमें धीरे-धीरे ठहराव आने लगा। नया चिकित्सा विज्ञान आने के बाद तथा ब्रिटिशों के समर्थन से उसका विकास होने के बाद पुरानी चिकित्सा पद्धति का महत्त्व कम होता गया।



फिर भी भारतीय शास्त्रों के अनुसार हजारों वनस्पतियों के औषधीय गुण हमें मालूम हैं। स्थानीय वैद्य, कविराज, जानकार उन्हें अच्छी तरह से उपयोग में लाते हैं। इनमें केवल वनस्पति-औषधियां ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य संरक्षण की परंपराएं भी हैं जिन्हें संभालकर रखना चाहिए।

इस परंपरागत शास्त्रानुभव का हमें योग्य इस्तेमाल करना चाहिए। आधुनिक विज्ञान ने हमें सही-गलत करने के तरीके सिखाए हैं, उनकी मदद से हमें अपनी परंपरागत चिकित्सा पद्धति की छानबीन करना जरूरी है। हम यदि वैद्य, कविराज आदि को बिल्कुल ही नकारेंगे तो योग्य-अयोग्य सभी नष्ट होने का खतरा है।

हमारे गांव, परिसर में जो औषधीय वनस्पतियां होंगी उन्हें नोट करते हुए उनके उपयोग की सही जानकारी कर लेना आवश्यक है। सभी भाषाओं में जानकारी देने वाली पुस्तकें उपलब्ध हैं। इन वनस्पतियों की देखभाल करना, वे नष्ट न हों इसका ध्यान रखना हम सबका कर्तव्य है। खुद हमारे ही घरों में बुजुर्गों के पास ऐसी जानकारी होती है उसे सुरक्षित रखना चाहिए।

क्या हम कभी इस बात पर ध्यान देते हैं कि हमारे घरों में जब छोटी-मोटी बीमारियां होती हैं तब हम घरेलू इलाज भी कर सकते हैं? कई प्रकार की मामूली बीमारियां घरेलू उपचारों से ठीक हो जाती हैं या कम से कम उनकी गंभीरता कम हो जाती है। हमें उनका इस्तेमाल करना नहीं भूलना चाहिए। कई डाक्टर अपने घरों में उन्हें इस्तेमाल करते हैं लेकिन दूसरों को अलग दवाएं देते हैं।

परंपरा का झूठा अभिमान नहीं होना चाहिए लेकिन उससे अंधी नफरत भी नहीं होनी चाहिए। वैज्ञानिक विचार और वैज्ञानिक उपयोग जरूर होना चाहिए।

6
उपसंहार

स्वास्थ्य रक्षक

एक बार मैं हिमालय के एक दुर्गम देहात में गया था, तब गांव वालों ने मेरी मुलाकात एक तेज-तर्रार व्यक्ति से करवाई थी। वह था एक स्वास्थ्य सेवक। सरकारी योजना कब की बंद हो चुकी थी लेकिन गांव वालों ने उसे खर्चा-पानी देकर दवाएं दिलवाने का काम जारी रखा था। जहां आठ-आठ दिन रास्ते बंद रहते हैं वहां यह आदमी जरूरतमंद लोगों को दवाएं देकर उसकी मदद करता है।

चीन में एक 'नंगे पांव वाले डाक्टर' का सफल प्रयोग हुआ था जिसे देखकर हमारे यहां भी स्वास्थ्य-रक्षक योजना 1977 से शुरू की गई थी। हरेक ग्राम पंचायत क्षेत्र में 6-7 पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों को चुनकर उन्हें तीन महीने प्रशिक्षण दिया गया और कुछ साधन-सामग्री भी दी गई। भारत में सिर्फ केरल को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में यह योजना बनाई गई। शुरुआती दौर में लाखों लोगों को अपने ही गांव में दवाएं मिलने की सुविधा होने की वजह से योजना लोकप्रिय हुई लेकिन 5-10 सालों के अंदर ही वह नाकाम होने लगी। मूलरूप से अच्छी यह योजना अब कई राज्यों में ठप हो गई है।

हमारे देश के दुर्गम गांवों में इस तरह की योजना गरीब जनता को दवाएं उपलब्ध कराने में मददगार साबित होगी।

अब यदि नए सिरे से विचार करना है तो स्वास्थ्य सेवकों के

लिए अच्छा प्रशिक्षण, सही वेतन, औषधि तंत्रज्ञान के उपयोग के लिए सही नियोजन आदि कदम उठाने जरूरी हैं। इसके लिए जरूरी है कि प्रशासन मान्यताप्राप्त प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम को कानूनी तौर पर इजाजत दे। स्वास्थ्य सेवकों को विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा घोषित 30-35 दवाएं मिलने की व्यवस्था हो। इसके बाद ही वे स्वास्थ्य सुरक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, बीमारी की रोकथाम, राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजनाओं को लागू करवाने की जिम्मेदारी आदि का काम कर सकेंगे।

इसी के साथ यह जरूरी है कि इन योजनाओं को ग्राम-स्तर पर जनता अपने संगठनों द्वारा अथवा पंचायत के माध्यम से चलाये। तीसरी बात, स्वास्थ्य सेवकों को संतोषजनक मेहनताना मिलना आवश्यक है वरना वे काम छोड़कर चले जाएंगे। इसमें से कुछ खर्च लोग खुद कर सकते हैं तो कुछ प्रशासन को करना चाहिए। इससे योजनाएं अच्छी तरह से सफल होंगी।

चिकित्सा संबंधी कानूनों में इस तरह के पाठ्यक्रमों को सही स्थान मिलना आवश्यक है। केंद्र सरकार और राज्य सरकार को इस तरह के सुधार करने चाहिए।

इस तरह की अच्छी सुविधाएं देने से गांव-गांव में बीमार व्यक्ति को कम खर्चे में दवाएं मिलेंगी व उसका इलाज होगा। ऊपर से उसे स्वास्थ्य संबंधी सलाह भी मिलेगी। इस प्रकार तकरीबन 70-80 मरीजों को अपने ही गांव में आराम मिलेगा। दरअसल राज्य परिवहन पर होने वाले खर्चे से कम खर्चे में यह काम होगा।

हममें से कई लोगों को मालूम भी नहीं होगा कि गांधी जी ने इस प्रकार का पाठ्यक्रम वर्धा में शुरू करने की कोशिश की थी। इस पाठ्यक्रम में सिर्फ आयुर्वेदिक औषधियां थीं। गांधी जी ने कलकत्ता के एक डाक्टर से देहाती पढ़े-लिखे लोगों के लिए एक वैद्यकीय पुस्तक अंग्रेजी में लिखवाई थी। उसमें देशी तथा विदेशी दवाओं के

बारे में लिखा था। दुर्भाग्य से बापू की हत्या के बाद हमारे राज्यकर्ता उसे भूल गए। आज भी उस काम की जरूरत है।

भारत भर में हजारों डाक्टर हर साल डिग्री लेते हैं। उनमें से ज्यादातर सात समुंदर पार जाकर लक्ष्मी और सरस्वती की उपासना में मग्न हो जाते हैं। पिछले कुछ सालों से यह प्रवृत्ति देखने को मिल रही है कि प्रशिक्षित डाक्टर गांवों की ओर न जाकर शहरों में ही रहना पसंद कर रहे हैं। इस परिस्थिति में कम पढ़ा-लिखा, साधन-सामग्री के अभाव से ग्रस्त स्वास्थ्य-सेवक तक किसी गांव को उपलब्ध न हों यह अफसोस की बात है। जिस देश में लाखों लोग गांवों में रहते हैं वहां इस योजना का कोई विकल्प नहीं है। हमें इस बात पर सोचना चाहिए।

नई चुनौतियां

पचास साल में हमने वैज्ञानिक तंत्रज्ञान और अन्य प्रगति के बलबूते कुछ हासिल किया, फिर भी काफी कुछ रह गया। लेकिन अब भविष्य की चुनौतियों को सही समझना पड़ेगा वरना आगे आने वाली कठिनाइयों का सामना करने के लिए बहुत ज्यादा तैयारी की जरूरत होगी।

पहली बात, जब तक हम कुपोषण का प्रश्न हल नहीं करते, तब तक संक्रामक बीमारियों का प्रश्न जस का तस रहेगा। बीमारियों का स्वरूप बदलेगा लेकिन बीमारों की संख्या का अनुपात नहीं बदलेगा। कुपोषण की वजह से शारीरिक क्षमता भी कम होगी। कैसे करेंगे हम इसका मुकाबला?

जब तक जीवन का स्तर नीचा है तब तक टी.बी., कुष्ठरोग, मलेरिया व हैजा जैसी बीमारियों से हम छुटकारा नहीं पा सकते। इसके अलावा प्लेग आदि जैसी अतीत की बीमारियां किसी भी समय

पुनः अपना सिर उठा सकती हैं यह भी हमने देखा है। मच्छरों से पैदा होने वाली बीमारियां तो हैं ही, डेंगू का खतरा भी समय-समय पर परेशान कर सकता है।

टी.बी. की जड़ें काफी गहराई तक पहुंची हुई हैं। एड्स के फैलाव से टी.बी. का खतरा और भी बढ़ेगा यह बात विशेषज्ञ अभी से कह रहे हैं। एड्स हमारे देश में सिर्फ दस साल पहले प्रकट हुआ था लेकिन अब उसने यहां पैर जमा लिये हैं। उसकी बढ़ने की गति इतनी तेज है कि कुछ ही सालों में हमारे सभी साधन सिर्फ उसी का मुकाबला करने में खर्च होने की संभावना है। इसे टालने का ज्ञान उपलब्ध है पर जब तक पिछड़े हुए लोग उसे इस्तेमाल करेंगे तब तक अनगिनत परिवार उससे बरबाद हो जाएंगे।

जैसे-जैसे आयुर्मान बढ़ता है वैसे-वैसे कुछ बीमारियां कुदरती तौर पर बढ़ती हैं। कैंसर, टी.बी., अति रक्तचाप, हृदय विकार, मधुमेह आदि बीमारियां बुढ़ापे में ज्यादा होती हैं। इन बीमारियों की जांच, उनका इलाज आदि के लिए अधिक खर्चा आता है। इस समय ग्रामीण क्षेत्र में प्रशिक्षित डाक्टरों की कमी है, इसलिए भविष्य में वहां इसका मुकाबला किस तरह किया जाएगा इसकी तैयारी अभी से करनी होगी।

दुर्घटना और व्यवसाय से जुड़ी बीमारियों की संख्या आए दिन बढ़ रही है। हमारे पास इसके नियंत्रण के लिए न तो पर्याप्त साधन है, न ही उसे टालने के लिए व्यवस्था।

शहरों में बने-बनाए खाद्य-पदार्थों की काफी मांग है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ कम। लेकिन उसकी शुद्धता और स्वच्छता पर नियंत्रण रखने की कोई कारगर व्यवस्था नहीं है। अब हमें बेशक उसकी आदत पड़ी हो, कुल मिलाकर उसका परिणाम बुरा ही होता है।

खाद्यान्न की ही तरह दवाओं का उत्पादन एवं बिक्री बढ़ रही है। लेकिन दवा उत्पादन के मानकों का पालन हमारे यहां सही तरीके से नहीं होता है। वैसे भी गैर-वैज्ञानिक तरीके से बनी दवाओं की भरमार एक समस्या बन चुकी है। इस समस्या की वजह से जनता का और राष्ट्र का बहुमूल्य पैसा बरबाद हो जाता है, ऊपर से दुष्परिणामों की श्रृंखला तो है ही।

ग्रामीण क्षेत्र में प्रशिक्षित डाक्टरों का अभाव है, अन्य लोगों को रोगनिदान और औषधि-शास्त्र के बारे में सही जानकारी नहीं है, यह वास्तविकता है। इन लोगों को प्रशिक्षण देने, उनकी वैज्ञानिक सोच बढ़ाने और रोगी के हित को प्राथमिकता देने की जरूरत है।

प्रसूति और गर्भावस्था के समय होने वाली मृत्यु एक गंभीर समस्या बन चुकी है। इस समय देहातों में आधे से ज्यादा प्रसूतियां घरों में ही होती हैं। उस समय मदद के लिए दाई के अलावा कोई नहीं होता है। सभी सुविधाओं से परिपूर्ण प्रसूतिगृह में प्रसूति होने से अकालमृत्यु को टाला जा सकता है। ग्रामीण अस्पताल अभी तक उस तरह से सुविधासंपन्न नहीं हो पाए हैं। सब कुछ होते हुए भी यह कार्यक्रम अब तक आगे नहीं बढ़ा है। इसलिए ‘सुरक्षित मातृत्व’ शायद सिर्फ घोषणा ही बनी रहेगी।

खेद की बात है कि हमारे देश में प्रत्यक्ष ग्राम-स्तर पर एक भी उल्लेखनीय स्वास्थ्य-सेवा उपलब्ध नहीं है। स्वास्थ्य-रक्षक योजना कामचलाऊ थी, लेकिन अब वह भी बंद हो चुकी है। इस तरह की साधन के अभाव में हम किसके आधार पर राष्ट्रीय स्वास्थ्य सुधार की योजनाओं को सफल बनाएंगे?

यही हैं हमरी मुख्य समस्याएं। उनका हल हमें ढूंढ़ना होगा।

कुछ खास कानून

ग्रामीण इलाके के लोगों को स्वास्थ्य-संबंधित कानूनों की जानकारी हो और उन्हें अपने कर्तव्य का एहसास हो इस मकसद से यहां कुछ खास कानूनों की संक्षेप में जानकारी दी गई है। समय आने पर उनका उपयोग हो सकता है।

1. गम्भीर मरीज को सरकारी अस्पताल में दाखिल करने की बाध्यता : किसी भी गंभीर रोगी को अस्पताल में दाखिल करने को सरकारी अस्पताल बाध्य है। यदि उसका उल्लंघन होता है तो उनके विरुद्ध अपराध कानून के तहत केस दर्ज हो सकता है। कुछ सरकारी अस्पताल रोगी को प्राथमिक उपचार के बाद आगे किसी बेहतर सुविधायुक्त (सरकारी) अस्पताल में भेज सकते हैं। यह कानून के अनुसार होगा। दरअसल दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति का निजी अस्पतालों में भी जीवनरक्षक इलाज करने का प्रावधान है। परंतु उस अस्पताल की कुशलता की सीमाओं और फीस का भी ध्यान रखना पड़ेगा।

2. संज्ञेय चोट : फौजदारी कानून के अनुसार जिस चोट का स्वरूप गंभीर होता है उसका संज्ञान लेकर आगे की कार्यवाही करना पुलिस का काम है। इनमें हड्डी टूटना, दांत टूटना, चेहरा बदसूरत होना, लिंग पर चोट लगना, मृत्यु की संभावना हो इस तरह की चोट आना, तेज धार वाले हथियार से चोट आना, बीस से अधिक दिन अस्पताल में दाखिल होने लायक चोट आना; नाक, कान, जीभ, आंखें इनमें से किसी भी अंग को गंभीर चोट आना आदि चोटें शामिल हैं, अर्थात् यह मेडिकल सर्टिफिकेट से साबित करना पड़ेगा।

3. बलात्कार (जबरदस्ती संभोग) : सोलह साल से कम उम्र की (नाबालिग) लड़की के साथ संभोग करना बलात्कार समझा जाता है। 'उसकी सहमति से किया गया है' अथवा 'वह पत्नी है' यह दलील नहीं चल सकती है। यदि वह बालिग है लेकिन पागल अथवा

मतिमंद है, या फिर किसी नशीले पदार्थ के असर में है तो भी उसके साथ किए गए संभोग को बलात्कार समझा गया है। इसी प्रकार किसी भी बालिग स्त्री के साथ बगैर उसकी सहमति के किए गए संभोग को बलात्कार माना गया है। भारतीय कानून के अनुसार पुरुष का लिंग स्त्री की योनि में पूर्णतः घुसने की बात बलात्कार कानून में नहीं की गई है, सिर्फ लिंग-स्पर्श काफी है। लेकिन उसे साबित करने के लिए वीर्य के निशान आवश्यक हैं । जितनी जल्दी इसकी जांच हो अपराध साबित होने में उतनी ही मदद मिलती है।

4. शादी की उम्र का कानून : अठारह साल से कम उम्र की लड़की से शादी करना अपराध है। इस बारे में संबंधित व्यक्तियों को सजा हो सकती है।

5. चिकित्सकीय गर्भपात कानून : 20 सप्ताह के अंदर का गर्भ चिकित्सकीय तरीकों से गिराने को कानूनी सहमति है। इसके लिए उस स्त्री की सहमति काफी है (मतिमंद अथवा नाबालिग लड़की के मामले में उसके मां-बाप की सहमति चाहिए)। सरकारी मान्यताप्राप्त गर्भपात केंद्र में ही इसे कर सकते हैं, अन्य अस्पताल कानूनी रूप से अवैध हैं। गर्भपात केंद्र और गर्भपात करने वाले डाक्टर की अलग-अलग मान्यता होना अनिवार्य है। जहां रक्त-बैंक की सुविधा नहीं है वहां केवल 12 सप्ताह के अंदर के गर्भ को गिराया जा सकता है। परिवार नियोजन के साधनों का उपयोग करने के बाद भी गर्भ ठहरना, मां की बीमारी, गर्भ में विकृति आने की संभावना, बलात्कार की वजह से गर्भ ठहरना इत्यादि कई कारण गर्भपात के लिए काफी हैं।

6. जन्म-मृत्यु का पंजीकरण : हर ग्राम पंचायत के दायरे में हुआ जन्म 7 दिन के अंदर दाखिल करना अनिवार्य है (यदि जन्म लेते ही मृत्यु हुई हो तब भी)। मृत्यु की सूचना 3 दिनों के अंदर देनी चाहिए। जिसके घर में, आंगन में, अस्पताल में यह हुआ हो उसकी

यह जिम्मेदारी है।

7. अन्न-मिलावट प्रतिरोधक कानून : किसी भी खाद्यान्न में अयोग्य पदार्थ मिलाना, उसका अर्क (सत्त्व) निकाल लेना, नकली पदार्थ देना, नाप-तौल में हेराफेरी करना आदि बातें इस कानून में आती हैं। अन्न निरीक्षक इस कानून को लागू करते हैं।

8. औषधि नियंत्रण कानून : कुछ चुनिंदा औषधियों को छोड़ दिया जाए तो मान्यता प्राप्त डाक्टर की पर्ची के बगैर दवाएं खरीदना अपराध है।

9. चिकित्सीय व्यवसाय कानून : जिस व्यक्ति को चिकित्सा व्यवसाय करना हो उसे मान्यता प्राप्त कोर्स का प्रमाण पत्र और संबंधित मेडिकल काउंसिल का सर्टिफिकेट ऐसी जगह पर लगाना आवश्यक है जहां सबकी निगाह पड़े। इसी प्रकार से संबंधित काउंसिल द्वारा प्रमाणित दवाओं को ही वह लिखकर दें ऐसा कानून है। इसका उल्लंघन संज्ञेय अपराध है।

10. महामारी नियंत्रण : जब किसी भी प्रकार की महामारी फैलने का खतरा हो तब तहसीलदार, कलेक्टर आदि अधिकारी जनता पर विशेष प्रतिबंध लगा सकते हैं। महामारी का फैलाव न हो यही इसका उद्देश्य है। पानी के चुनिंदा स्रोत बंद करना, साप्ताहिक बाजार पर प्रतिबंध लगाना, सफाई के लिए कुछ प्रतिबंध लगाना आदि चीजें इनमें आती हैं।

11. प्रदूषण नियंत्रक प्रतिबंध : हवा, पानी, ध्वनि, जमीन के प्रदूषण संबंधित शिकायतें।

12. अप्राकृतिक मृत्यु : यदि किसी की मृत्यु अप्राकृतिक कारणों से (अकस्मात, दुर्घटना, अस्पताल में दाखिल करने के 24 घंटे के अंदर) हुई हो, जिसका कारण डाक्टर भी नहीं बता पा रहे हैं, तो पुलिस को इसकी खबर देना आवश्यक है। जिसके आंगन में ऐसी

मृत्यु हुई हो अथवा लाश मिली हो उसकी यह जिम्मेदारी है। यदि किसी विवाहिता की शादी के सात साल के अंदर मृत्यु होती है तो भी उसकी जानकारी देना अनिवार्य है। इस तरह की मृत्यु की तहकीकात सिर्फ पुलिस इंस्पेक्टर के पद वाला अधिकारी ही कर सकता है।

13. ग्राहक संरक्षण कानून : हाल में ही चिकित्सकीय व्यवसाय में भी ग्राहक संरक्षण कानून लागू किया गया है। कभी-कभी मरीज या उसके संबंधियों को लगता है कि डाक्टर अथवा अस्पताल की लापरवाही से मरीज को नुकसान पहुंचा है। ऐसी स्थिति में डाक्टर से केस पेपर मंगवाकर ग्राहक संरक्षण कोर्ट के पास न्याय की गुहार कर सकते हैं। लेकिन किसी दो अन्य डाक्टरों को लिखकर देना पड़ता है कि यह मामला सचमुच लापरवाही का है। उन पर कोर्ट में आकर गवाही देने का भी बंधन है। हर्जाने की रकम के अनुसार जिला कोर्ट, राज्य स्तर का कोर्ट अथवा दिल्ली के किसी भी प्रमुख ग्राहक कोर्ट में शिकायत दर्ज करनी पड़ती है। घटना घटने के छह महीने के अंदर उसे दर्ज करना पड़ता है। केस हारने की स्थिति में शिकायतकर्ता को 10,000 रुपये जुर्माना भरना पड़ता है। इस कानून की वजह से ग्राहकों को काफी मदद मिली है, फिर भी इस कानून का प्रयोग सोच-समझकर ही करना चाहिए, वरना चिकित्सकीय इलाज का खर्चा और कोर्ट-कचहरी के चक्कर बढ़ने का खतरा बन सकता है।

विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत का स्वास्थ्य (विश्व-बैंक रिपोर्ट के आंकड़ों पर आधारित)

देश/विभाग	प्रति एक हजार आबादी में बरबाद होने वाले वर्ष (नोट देखिए)	प्रति एक लाख आबादी में टी.बी. के नए रुग्ण-दर	2 से 5 वर्ष की उम्र के बच्चों में कुपोषण की दर	0 से 4 वर्ष की उम्र के बच्चों की मृत्यु-दर का प्रतिशत	स्वास्थ्य सेवाओं पर राष्ट्र की कुल आय का हिस्सा प्रतिशत		सेवाओं से वंचित		स्वास्थ्य सेवाओं का प्रति एक हजार आबादी के लिए		टीकाकरण का प्रतिशत	
					सरकारी खर्च प्रतिशत	निजी खर्च	सफाई (शौचालय) प्रतिशत	पीने का साफ पानी प्रतिशत	अस्पताल विस्तर	प्रशिक्षित डाक्टर	ट्रिपल टीका	खसरे का टीका
1. भारत	344	220	65	10.5	1.3	4.7	85	30	0.7	0.41	83	77
2. चीन	178	166	41	3.6	2.1	1.4	15	30	2.6	1.37	95	96
3. अन्य एशियाई देश	260	201	53	8.2	1 8	2.7	60	40	1.8	0.31	81	78
4. दक्षिणी अफ्रीकी देश	575	220	39	15.2	2.5	2.0	65	52	1.4	0.12	52	52
5. लैटिन अमेरिकी देश	233	92	26	5.1	2.4	1.6	3.0	25	2.7	1.25	71	75
6. मध्य-पूर्व के देश	286	99	50 (पाक)	9 0	2.4	1.7	40	30	2.9	1.0	75	74
7. पूर्वी कम्युनिस्ट (भूतपूर्व) देश	168	52	4	1.9	2.5	1.0	15	10	11.4	4.0	77	86
8. विकसित देश (यूरोप-अमेरिका आदि)	117	20	4	1.0	5.6	3.5	15	5	8.3	2.5	80	77
9. विश्व का औसत	259	142	42	8.7	4.9	3.2	40	30	3.6	1.34	80	79

नोट : बीमारी और मृत्यु की वजह से बरबाद होने वाले वर्षों (हर साल, प्रति हजार) की गिनती। यहां 344 का अर्थ है 1000 की आबादी में बरबाद होने वाले वर्ष कुल 344 होते हैं।

इंडिका इंफोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058 द्वारा लेजर सेट होकर तथा शिवम ऑफसेट प्रेस, नारायणा, नयी दिल्ली द्वारा मुद्रित।